महाकविश्रीमदश्वघोषविरचितं

बुद्धचरितम्

साहित्य भण्डार

शिक्षा साहित्य के मुद्रक एवं प्रकाशक

सुभाष बाज़ार, मेरठ-२५०००२

श्री महाकवि अश्वघोष विरचितम्

बुद्धचरितम्

[तृतीय सर्ग]

[श्लोकान्वय, संस्कृत-व्याख्या, हिन्दी अनुवाद, समास, टिप्पणी, समालोचनात्मक विस्तृत भूमिका सहित]

सम्पादक तथा व्याख्याकार :
चुन्नीलाल शुक्ल, साहित्याचार्य
एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत), साहित्यरत्न

साहित्य भण्डार
शिक्षा साहित्य के मुद्रक एवं प्रकाशक
सुभाष बाजार, मेरठ-२५० ००२

● प्रकाशक :

रतिराम शास्त्री

अध्यक्ष :

साहित्य भण्डार

सुभाष बाजार, मेरठ।

दूरभाष : २२७५४

● नवीन संस्करण

● मूल्य : पन्द्रह रुपये

● मुद्रक :

आदित्य ऑफसैट प्रेस

दिल्ली।

नम्र निवेदन

जब जब संसार में धार्मिक प्रवृत्ति एवं पारस्परिक सद्भावना का ह्रास होता है, तब तब संसार को सचेष्ट करने के लिए और सत्पथ का अवलोकन कराने के लिये कोई न कोई महापुरुष अवतरित होता है, जैसा कि भगवान् श्री कृष्ण ने गीता में कहा हैं कि—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।

इसी प्रकार महात्मा तुलसीदास ने भी रामायण में निम्न प्रकार लिखा है—

जब जब होई धर्म कै हानी, बाढ़ैं असुर अधम अभिमानी ।।
तब तब प्रभु धरि मनुज शरीरा, हरहिं सदा भव सज्जन पीरा ।।

बुद्ध के जन्म के समय संसार विलासिता, स्वार्थ, हिंसा, पाखण्ड, और ...श्वास आदि में अन्धा हो रहा था उस समय की सामाजिक दशा बड़ी ...य हो चुकी थी । इसी विषम स्थिति में बुद्ध भगवान ने जन्म ग्रहण करके ...ोक को विलासिता आदि से दूर रहने और मोक्ष मार्ग का अवलम्वन करने का उपदेश दिया । महाकवि अश्वघोष ने बुद्ध भगवान् के अमूल्य लोकोपकारी उपदेशों को जन-साधारण तक पहुँचाने के लिए काव्य कला का आश्रय ग्रहण करके बुद्धचरित नामक महाकाव्य का प्रणयन किया ।

जिस प्रकार वाल्मीकि आदि कविगण ने राम के आदर्श एबं पावन चरित्र को अपने काव्यों का विषय बनाकर लोक में आदर्श चरित्र का प्रचार व प्रसार करने के साथ-साथ स्वयं यशः शरीर से अमर हो गये और महर्षि वेद व्यास आदि कृष्ण के उदात्त चरित्र का चित्रण करके समस्त संसार को ज्ञान का आलोक प्रदान करते हुये अमरता को प्राप्त हो गये । उसी प्रकार महाकवि अश्वघोष की लेखनी ने बुद्ध के पावन एबं लोकोपकारी दिव्य यश का वर्णन करके स्वयं दिव्य हो गई । अश्वघोष ने दर्शन शास्त्रों के गूढ़ रहस्यों को हृदयंगम करके बौद्ध दर्शन एवं धर्म का प्रचार किया । उनकी काव्य शैली प्रसाद गुण से ओतप्रोत होने के कारण शीघ्र जनप्रिय हो गई । उन्होंने दर्शन शास्त्र के दुरूह विषयों को भी काव्य माधुरी के रस से आप्लावित करके सर्वसाधारण को भी आलौकिक काव्यामृत का पान कराया । रस, भाव, एवं भाषा आदि की दृष्टि से बुद्धचरित एक सफल एवं अनुपम कृति है ।

बुद्धचरित पर छात्रोपयोगिनी टीका का अभाव-सा देखकर मैंने अन्वय, संस्कृत व्याख्या, हिन्दी-अर्थ, टिप्पणी, शब्दार्थ, व्याकरण, प्रकृति-प्रत्यय, अलङ्कार, आदि का विवेचन करते हुए सरल टीका लिखने का प्रयास किया है। इसके अतिरिक्त इसकी विस्तृत प्रस्तावना में अश्वघोष और बुद्धचरित से सम्बन्धित सभी विवेच्य प्रश्नों की पर्याप्त आलोचनात्मक सामग्री प्रस्तुत कर दी है। आशा है, इससे छात्र अपनी अभिरुचि के अनुकूल लाभान्वित होंगे। परेश शक्ति के अतिरिक्त समस्त ससार अपूर्ण एवं त्रुटि-ग्रस्त है। इस प्रकार प्रस्तुत टीका में स्खलतियों का होना भी अस्वाभाविक नहीं है। अतः विद्वज्जनों एवं जिज्ञासु छात्रों से अनुरोध है कि वे यथावसर स्खलतियों को सूचित करने का कष्ट करें जिनका भविष्य में ध्यान रखा जायेगा और हम उनके कृतज्ञ होंगे।

प्रस्तावना लेखक श्री त्रिवेणीदत्त त्रिपाठी शास्त्री चञ्चरीक के प्रति विशेष आभारी हूँ जिन्होंने प्रस्तावना लिखकर इस सम्पादन में [illegible] प्रदान किया है।

अन्त में जिन्होंने इसके प्रकाशन में सहयोग प्रदान किया है, उन सबके प्रति मैं आभार प्रकट करता हूँ। साहित्य भण्डार के संस्थापक एवं अध्यक्ष श्री रतिराम शास्त्री जी के प्रति जो भी आभार प्रकटित करूं वह अत्यल्प ही होगा। क्योंकि उनकी प्रेरणा एवं आशीर्वाद से ही मैं इस लेखन कार्य में प्रवृत्त हुआ हूँ।

विदुषामाश्रवः
चुन्नीलाल शुक्ल, साहित्याचार्य,
एम० ए०, (हिन्दी, संस्कृत), साहित्यरत्न

प्रास्ताविकम्

(अश्वघोष)

भगवान् बुद्धदेव के उपदेशों को केवल भारत में ही सम्मान नहीं प्राप्त हुआ अपितु विदेशों में (जावा, सुमित्रा, बाली, चीन, लंका आदि में) भी पर्याप्त सम्मान प्राप्त हुआ और आज भी बुद्ध के उपदेशों को बड़े आदर के साथ सुना जाता है और उनका सार ग्रहण किया जाता है। यही कारण है कि बुद्धदेव तो बु[illegible]न्तर उनके उपदेशों को कितना अधिक व्यापक महत्व प्राप्त हुआ और व्या[illegible] को कितना अधिक प्रचार एवं प्रसार हुआ यह सभी लोग जानते ही हैं। पहले [illegible] समय पर उत्पन्न होने वाले राजाओं, महाराजाओं और विद्वानों तथा [illegible]वियों ने बौद्ध-धर्म के प्रचार और प्रसार में कितना अधिक प्रयास किया है, इसका इतिहास प्रमाण है। सम्राट् अशोक ने तो बौद्ध-धर्म की महत्ता स्वीकार करके इसको व्यापक बनाने में अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया। अशोक के पश्चात् कुषाण वंश के राजा कनिष्क ने बौद्ध-धर्म के प्रचार एवं रक्षा में जो सहयोग प्रदान किया है, उसे इतिहास कभी भुला नहीं सकता है। यदि बौद्ध-धर्म के सम्राट् अशोक [illegible] लंका, श्याम, जावा, सुमित्रा आदि देशों में प्रचार एवं प्रसार किया तो कनिष्क ने मध्य एशिया, चीन, तुर्किस्तान और कोरिया आदि देशों में बौद्ध-धर्म का व्यापक प्रचार एवं प्रसार करके बौद्ध-धर्म के प्रति अपनी अपार निष्ठा व्यक्त की है।

राजाओं ने बौद्ध-धर्म के प्रचार में जो योगदान किया है, वह श्लाघनीय अवश्य है और साथ ही जिन विद्वानों ने अपनी अद्भुत प्रतिभा और तर्क बुद्धि के द्वारा बौद्ध-धर्म को दार्शनिकता के परिवेश में प्रस्तुत करके बौद्ध-धर्म के प्रचार एवं प्रसार में अपूर्व सहयोग दिया है। बौद्ध-धर्म को दार्शनिक स्वरूप प्रदान करने वाले विद्वानों के प्रमुख नाम इस प्रकार माने जाते हैं—(१) नागार्जुन, (२) आर्यदेव, (३) वसुबन्धु आदि हैं। बौद्ध-धर्म के प्रचार और प्रसार मे, दार्शनिकस्वरूप प्रदान म इन विद्वानों का योग प्रशंसनीय है।

इस प्रकार बौद्ध-धर्म के प्रचार और प्रसार में राजाओं तथा विद्वानों का बराबर सहयोग प्राप्त हुआ, जिसके परिणामस्वरूप बौद्ध-धर्म की गम्भीरता में चार-चांद लग गये क्योंकि एक ओर राजाओं ने धन ऐश्वर्य से बौद्ध-धर्म के प्रचारमें सहयोग किया, दूसरी ओर विद्वानोंने अपनी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा से बुद्ध भगवान् के गम्भीर उपदेशों को सरसता और पवित्रता प्रदान की और बुद्ध के उपदेशों को सर्वसाधारण के कानों में पहुंचाने का अथक प्रयास किया। उन विद्वानों और कवियों में श्री अश्वघोष का नाम बड़े आदर और गौरव के साथ लिया जाता है। यही कारण है कि आज भी अश्वघोष का नाम बौद्ध दर्शन की प्रसिद्ध आचार्य चतुष्टमी में नागार्जुन के साथ सम्मान-पूर्वक स्मरण किया जाता है।

अश्वघोष का जीवन-वृत्त :—

भारतीय प्राचीन साहित्य प्रणेताओं की अपनी एक परम्परा रही है अमूल्य ग्रन्थ रत्नों की सृष्टि करने के पश्चात् भी अपने विषय में कहीं भी रचना के प्रारम्भ या मध्य अथवा अन्त में जीवन, परिवार, रुचि आदि के सम्बन्ध में कुछ भी संकेत नहीं किया है। इस दशा में जब यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि इन ग्रन्थ रत्नों के रचयिता का जीवन स्थान कहां हुआ होगा? जीवन वृत्त कैसा रहा होगा और कब, किस सम्वत् अथवा सन् में जन्म ग्रहण किया होगा? इनके माता-पिता आदि का क्या नाम होगा? तो हमें इस विषय में कोई उल्लेख उनके ग्रन्थों में नहीं प्राप्त होता है। महाकवि अश्वघोष भी इसके अपवाद नहीं हैं। उन्होंने भी अपनी कृतियों में कहीं अपने जीवन परिचय का उल्लेख नहीं किया है। इस दशा में अश्वघोष के जीवन-वृत्त आदि के विषय में पूर्णरूप से निश्चित करके कुछ कहना सम्भव नहीं प्रतीत होता है, तथापि भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने महाकवि के जीवन काल आदि के विषय में जानकारी प्राप्त करने का अथक प्रयास किया है। महाकवि के जीवन एवं काल आदि के विषय में तिब्बत, चीन आदि बौद्ध देशों के साहित्य में प्रचुर सामग्री उपलब्ध होती है। इसका कारण यह है कि आज अश्वघोष की

कृतियां मूलरूप में संस्कृत में सुरक्षित न होकर चीनी तथा तिब्बती भाषा के अनुवाद रूप में सुरक्षित हैं। वास्तविकता तो यह है कि यदि बौद्ध देशों ने भारतीय ग्रन्थकारों के जीवन वृत्त एवं उनके ग्रन्थों की रक्षा करने का कार्य न किया होता तो आज हम एक अमूल्य साहित्यिक निधि के स्वाद और विद्वानों के परिचय से सर्वथा वञ्चित ही रह जाते। अतः बौद्ध देशों के साहित्य की इस देन के हम आभारी हैं।

अश्वघोष का वास्तविक नाम क्या था यह सन्दिग्ध एवं अज्ञात है। बौद्ध-धर्म मे दीक्षा ग्रहण करने के बाद ही उनका नाम अश्वघोष प्रसिद्ध हुआ। [illegible] नाम के विषय में एक मनोरंजक किंवदन्ती कही जाती है कि जिस ति। ब[illegible] का जन्म हुआ उस दिन घोड़े हिनहिनाये थे। इसी आधार पर व्यि[illegible] "अश्वघोष" पड़ गया। इसके अतिरिक्त एक और घटना इनके पहले [illegible] विषय में प्रसिद्ध है कि एक दिन बौद्ध-धर्म का उपदेश दे रहे थे कि [illegible]नकी मधुर अमृतमयी वाणी को सुनकर भूख से व्याकुल घोड़े ने घास खाना छोड़कर आध्यात्मिक आनन्द के उल्लास में आकर हिनहिनाना प्रारम्भ कर दिया था। इस अद्भुत घटना को देखकर विद्वान् उसी दिन से आपको अश्वघोष के नाम से पुकारने लगे अर्थात् अश्वघोष नाम रख दिया।

अश्वघोष के इस नामकरण में इतना सत्य अवश्य है कि उनकी वाणी नितान्त मधुर एवं हृदयावर्जक थी। तिब्बती भाषा में प्राप्त जीवन वृत्त से यह ज्ञात होता है कि यह संगीत शास्त्र के अधिकारी विद्वान् थे और बौद्ध-धर्म के प्रचार के लिये अनेक गायन, गायिकाओं का संघ बनाकर काश्मीर तथा पेशावर की सड़कों पर वीणा बजाते हुए वैराग्य के गीतों को गया करते थे। वाणी की मधुरता से आकर्षित होकर हजारों लोग अश्वघोष के अनुयायी हो गये थे।

चीनी यात्री इत्सिंग ने ७०० ई० में लिखा है कि उस समय अनेक बौद्ध विहारों में अश्वघोष के गीत बड़े आदर के साथ गाये जाते थे। इससे अश्वघोष के संगीत शास्त्र सम्बन्धी असाधारण ज्ञान का परिचय मिल जाता है। अतः

सम्भव है कि वाणी की मधुरता के आधार पर ही 'अश्वघोष' यह नाम पड़ गया हो ।

अश्वघोष की दो प्रमुख रचनायें प्राप्त होती हैं, उनके नाम—(१) बुद्ध-चरितम् और (२) सौन्दरानन्द हैं । इन कृतियों से उनके जीवन वृत्त पर कुछ सांकेतिक प्रकाश पड़ता है । बुद्धचरितम् और सौन्दरानन्द के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इनकी माता का नाम 'सुवर्णाक्षी' था क्योंकि अश्वघोष के द्वारा बुद्धचरित और सौन्दरानन्द के अन्त में निम्न वाक्य लिखा हुआ प्राप्त होता है—

"आर्य सुवर्णाक्षी-पुत्रस्य साकेतस्य भिक्षोराचार्य-भदन्ताश्वघोषस्य महाकवेः महावादिनः कृतिरियम्" ।

इस वाक्य से यह प्रतीत होता है कि अश्वघोष अयोध्या निवासी थे वाक्य के द्वारा माता को गौरव प्रदान करने के लिये "सुवर्णाक्षी पुत्रस्य" उल्लेख किया है । इस वाक्य में पिता के नाम का कोई संकेत नहीं किया गया है । कुछ विद्वानों का यह कथन है कि यह उनके गोत्र का नाम है । इस विषय में डॉ० विमलाचरण लाहा का कथन है कि अश्वघोष के समय तक ब्राह्मणों और क्षत्रियों में मातृ शक्ति का अधिक सम्मान किया जाता था । सम्भवतः इसीलिये माता के सुवर्णाक्षी नाम का उल्लेख किया और पिता के नाम की आवश्यकता नहीं समझी ।

साकेत शब्द से अयोध्या का ग्रहण किया जाता है क्योंकि कौशल एक बहुत बड़ा देश था जिसमें साकेत और अयोध्या ये दो नाम एक ही नगर के थे । इसके अतिरिक्त कुछ विद्वानों का कथन है कि सौन्दरानन्द के निम्नलिखित श्लोक के आधार पर अश्वघोष मध्य-प्रदेश के निवासी थे । यथाहि—

तयोः सत्पुत्रयोर्मध्ये शाक्यराजो रराज सः ।
मध्यदेश इव व्यक्तो हिमवत्पारिपात्रयोः ॥

प्रस्तुत श्लोक में प्रयुक्त 'मध्यदेश इव व्यक्तः' इस वाक्य से अश्वघोष

मध्यदेश निवासी माने जाते हैं। चीनी यात्री इत्सिंग ने मध्यदेश को भारत का ही एक अंग माना है अर्थात् मध्यदेश भारत का ही एक नाम है। कुछ विद्वान् लोग तो इनका आवास स्थान कुसुमपुर स्वीकार करते हैं। मातृचेट और अश्वघोष को एक ही स्थान का रहने वाला माना जाता है। मातृचेट का निवास स्थान 'कुसुमपुर' था। अतः अश्वघोष का भी आवास स्थान कुसुमपुर ही मानना चाहिये।

मातृचेट का आवास स्थान कुसुमपुर मानने वाले विद्वानों में डॉ० तारानाथ का नाम लिया जाता है, परन्तु "टाम" महोदय ने तारानाथ के मत का बड़े ही उचित तर्कों से खण्डन किया है।

सेनापति पुष्यमित्र ने सबसे पहले अयोध्या को राजधानी बनने का गौरव प्रदान किया. इससे पहले बुद्ध के समकालीन कोशलराज प्रसेनजित् के समय से [illegible] राजधानी मानी जाती रही है जो श्रावस्ती अयोध्या से ६ योजन (लगभग [illegible] कोस) दूर थी। साकेत अर्थात् अयोध्या तो व्यापार का मुख्य केन्द्र था। चन्द्रगुप्त मौर्य के समय तक अयोध्या को व्यापारिक नगर के रूप में पर्याप्त सम्मान प्राप्त था।

सेनापति पुष्यमित्र के शासन काल में (२०० ई० पूर्व में) ही पुरोहितों का एक उच्च वर्ग आकर साकेत में बस गया था। पुष्यमित्र का पुरोहित ब्राह्मण पतञ्जलि भी उन्हीं दिनों साकेत में रहते थे। पतञ्जलि का नाम एवं महत्व महाभाष्यकार के रूप में सर्वविदित है। इन साकेत निवासी पुरोहितों के मध्य में एक पुरोहित परिवार में अश्वघोष के पूर्वज रहते थे। अतः अश्वघोष का जन्म साकेत निवासी विद्वान पुरोहित के परिवार में हुआ।

राहुल जी ने अपनी "वोल्गा से गंगा" नामक पुस्तक में अश्वघोष की प्रेयसी का नाम प्रभा बताया है जो तत्कालीन साकेतवासी यवन वंश के सार्थवाह दत्तमित्र की कन्या थी। एक बार सरयू नदी में तैरने की प्रतियोगिता युवक और युवतियों में हुई थी, उसमें अश्वघोष और सार्थवाह की कन्या प्रभा सर्वप्रथम आई थी—इन दोनों में प्रथम आने के कारण ही एक दूसरे पर दोनों

का प्रेम हो गया था । जो प्रेक निरन्तर बढ़ता ही गया और यह प्रेमिका प्रभा हो अश्वघोष की काव्य रचना की प्रेरिका बनी । अश्वघोष ने युवावस्था में ही महाकवि के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे । युवक लोग अश्वघोप की शृंगारिक कविताओं को कण्ठस्थ गाया करते थे । इस प्रकार अश्वघोष ने युवावस्था में ही, महाकवि, संगीतज्ञ, अभिनेता, नाटककार आदि के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त कर ली थी । कालान्तर में इस अश्वघोष ने बौद्ध धर्म की दीक्षा ग्रहण की और साकेत के सर्वास्तिवाद सघ में सम्मिलित होकर भिक्षु हो गये ।

इस सम्बन्ध में कहा जाता है कि पेशावर में पार्श्व नामक एक भिक्षु से शास्त्रार्थ में पराजित हाने पर ही अश्वघोष ने ब्राह्मण धर्म को अर्थात् वैदिक धर्म को छोड़कर बौद्धधर्म में दीक्षित हुये थे । उन्हीं पार्श्व नामक अश्वघोष ने भिक्षुपद प्राप्त किया अर्थात् उन्हीं के शिष्य बन गये । वि कहना है कि अश्वघोष "पार्श्व" भिक्षु के शिष्य "पुण्ययशस्" के शिष्य परन्तु इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है । हां, अवश्य है कि पार्श्व भिक्षु उस समय के प्रसिद्ध, गम्भीर तार्किक विद्वान् थे । और विविध शास्त्रों के रहस्यवेत्ता थे । पेशावर में अश्वघोष के बौद्ध धर्म में दीक्षित हाने की कल्पना करना उचित प्रतीत नहीं होती है क्योंकि कनिष्क मगध से अश्वघोष को अपने साथ पेशावर ले गया था । इससे यह स्पष्ट होता है कि पेशावर जाने से पूर्व अश्वघोष बौद्ध धर्म में दीक्षित हो चुके थे और बौद्ध दर्शन का गम्भीर अध्ययन भी कर चुके थे । अतः अश्वघोष ने पेशावर में नहीं साकेत में ही बौद्ध धर्म की दीक्षा प्राप्त की थी ।

पाटलिपुत्र के अशोकाराम में रहकर दश वर्षों तक भदन्त अश्वघोष ने बौद्ध धर्म, बौद्ध दर्शन, और यवन दर्शन का भली भांति अध्ययन किया था । इसीलिए तत्कालीन मगध के महासांघिक सम्प्रदाय के विद्वानों में गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त किया । इसके बाद उनको विशिष्ट योग्यता एवं तर्कमयी बुद्धि तथा संगीतशास्त्र के मर्मज्ञ होने के कारण आर्य भदन्त, महापण्डित महावादिन् और महाराज आदि उपाधियों से विभूषित किया गया ।

इस प्रकार यह निश्चित होता है कि लोक कथाओं और ...ी भाषा में सुरक्षित साहित्य के आधार से अश्वघोष साकेत निवासी और ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुये थे। जो बाद में बौद्ध धर्म में दीक्षित हो गये। बौद्ध धर्म स्वीकार करने के बाद ही भारत के विभिन्न स्थानों का भ्रमण किया। जैसा कि सौन्दरानन्द के एक श्लोक से संकेत प्राप्त होता है कि—

अश्रान्तः समये यज्वा यज्ञभूमिममीयत्।
पालनाच्च द्विजान् ब्रह्म निरुद्विग्नममीयत्॥

प्रस्तुत श्लोक में प्रयुक्त "यज्ञभूमिममीयत्" इस पद से यज्ञभूमि को बनाना, ब्राह्मणों के धर्म का पालन करना आदि वर्णन से स्पष्ट है कि अश्वघोष ब्राह्मण थे। तिब्बती भाषा में उपलब्ध वर्णनों से भी यही ज्ञात होता है कि अश्वघोष पहले ब्राह्मण थे और बाद में बौद्ध धर्ममें दीक्षित होकर बौद्ध धर्म का प्रचार एवं प्रसार किया।

चीनी यात्री ह्वेनसांग ने अश्वघोष, देव, नागार्जुन और कुमारलब्ध को ...ार को प्रकाश प्रदान करने वाले चार "सूर्य" कहा है। अश्वघोष ने बौद्ध धर्म का प्रचार केवल शुष्क उपदेशों से ही नहीं किया अपितु काव्य के माध्यम से बौद्ध धर्म का प्रचार किया जो प्रचार चिरस्थायी रहेगा जब तक सूर्य और चन्द्र हैं तब तक काव्य के द्वारा बौद्ध धर्म का प्रचार होता रहेगा। इसी भाव को सौन्दरानन्द ने स्पष्ट करते हुये लिखा है कि—

"इत्येषा व्युपशान्तये न रतये मोक्षार्थगर्भाकृतिः॥

डा० जान्स्टन महोदय के अनुसार अश्वघोष ने सदा यह प्रयत्न किया—कि जिससे ब्राह्मण धर्म और बौद्ध धर्म के मतभेद को दूर करके ऐक्य की स्थापना हो जाय। सम्भवतः मतभेद दूर करने की दृष्टि से ही ब्राह्मण धर्माव-लम्बी होते हुये भी बौद्ध धर्म में दीक्षित हो गये और ब्राह्मण धर्म और बौद्ध धर्म के अन्तरों को दूर कर समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया। इसलिये अश्वघोष को ब्राह्मण धर्म और बौद्ध धर्म का समन्वयवादी कवि मानना चाहिये। बुद्ध भगवान्के जन्म का कारण संसारको मुक्ति प्राप्त कराना ही माना

है। इसीलिये बुद्ध चरित के प्रथम सर्ग के २७ वें श्लोक में लिखा है कि—

लोकस्य मोक्षाय गुरौ प्रसूते शमं प्रपेदे जगदव्यवस्थम् ।
प्राप्येन नाथं खलु नीतिमन्तं एको न मारो मुदमाप लोके ॥

इसी समय सम्राट कनिष्क पश्चिम पर विजय करता हुआ पूर्व में पाटलिपुत्र तक आ पहुंचा। कनिष्क ने मगध देश पर भी आक्रमण किया, परन्तु मगध नरेश के बौद्ध धर्म स्वीकार करने पर उसको अभयदान प्रदान किया। वास्तव में कनिष्क की यह विजययात्रा भूमि सीमा बढ़ाने के उद्देश्य से नहीं थी अपितु इस विजय यात्रा का मुख्य उद्देश्य बौद्ध धर्म का प्रचार एवं प्रसार था। कनिष्क स्वयं बौद्ध धम ज्ञाता एवं विद्वान् था उसने बौद्ध धर्म के संघ से एक प्रतिभाशाली विद्वान् को गान्धार ले जाने की अपनी इच्छा व्यक्त की। संघ ने कनिष्क की प्रार्थना स्वीकार करके प्रकाण्ड विद्वान् अश्वघोष को ही समर्पित कर दिया। जिस समय अश्वघोष पाटलिपुत्र से पेशावर पहुंचा तो वहां उसने शक, यवन, तुर्क, पारसी, और भारतीय आदि अनेक संस्कृतियों का समन्वय देखा कनिष्क के इस समन्वयवादी दृष्टिकोण को समझकर अश्वघोष को परम हर्ष हुआ। कनिष्क अश्वघोष की अपूर्व प्रतिभा एव विद्वत्ता से प्रभावित होकर उनको अपना गुरु बना लिया। इस प्रकार अश्वघोष का अधिक समय कनिष्क के राजकवि एव राजगुरु के रूप में व्यतीत हुआ।

राहुल महोदय ने "वज्रसूची" (वज्रच्छेदिका) को अश्वघोष की रचना स्वीकार करते हुए उसमें वर्णित कतिपय घटनाओं को अश्वघोष के जीवन वृत्त से सम्बन्धित बताया है। राहुल जी के अनुसार "वज्रच्छेदिका" के कुछ अंश ऐसे हैं जिनका सम्बन्ध प्राचीन ऋषियों के कर्मों एवं आचरणों से है। प्रमाण रूप में ऋषियों के आचरणों की कथा को अपनी माता के सामने इसलिये प्रस्तुत किया था। क्योंकि विजातीय यवन कन्या प्रभा के साथ उत्तम कुलोत्पन्न ब्राह्मण का विवाह कैसे उचित हो सकता है। अश्वघोष का यह अभिप्राय था इस प्रकार विजातीय विवाह वैदिक काल से ही होते आये हैं और उनका समाज ने समर्थन भी किया है। इस प्रकार विजातीय विवाह करके अश्वघोष ने अपने सुधारवादी उदार दृष्टिकोण का भी परिचय दिया है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि अश्वघोष के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में "इदमित्थम्" नहीं कहा जा सकता है तथापि अश्वघोष का व्यक्तित्व छुपा नहीं रह सका, उनका व्यक्तित्व भिक्षु, भदन्त, उपदेशक, महाकवि और संगीतशास्त्र के मर्मज्ञ के रूप में आदरपूर्वक स्मरण किया जाता है। कतिपय समीक्षकों ने उनका व्यक्तित्व आचार्य और उपदेशक के रूप में स्वीकार किया है और साथ ही नागार्जुन आदि दार्शनिक विद्वानों के मध्य में उनके नाम परिगणन करके दर्शनशास्त्र का ज्ञाता और अधिकारी विद्वान् माना गया है। यह सब होते हुए भी अश्वघोष के यथार्थ जीवन-वृत्त से हम अपरिचित ही हैं।

डा० हरिदत्त शास्त्री ने अश्वघोष नामक अपनी पुस्तक में लिखा है कि "अश्वघोष के समग्र व्यक्तित्व को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। प्रथम तो बौद्ध धर्म में सम्मिलित होने से पूर्व का व्यक्तित्व तथा द्वितीय बाद का व्यक्तित्व। इससे यह स्पष्ट अनुभव होता है कि शास्त्री जी के मत से अश्वघोष पहले ब्राह्मण और बाद में बौद्ध हो गये। अतः यह निर्णय किया जा सकता है कि अश्वघोष भारतवासी ब्राह्मण कुल मे उत्पन्न हुए थे।

अश्वघोष की जीवनी आदि के विषय में निश्चित रूप से कुछ कहना इसलिये सम्भव नहीं हो रहा है कि इतिहास में तीन अश्वघोष नामक विद्वानों का उल्लेख प्राप्त होता है, उनके तीन नाम इस प्रकार हैं—(१) बोधिसत्व अश्वघोष, (२) स्थविर अश्वघोष और (३) कवि अश्वघोष। इन तीन नामों के कारण अश्वघोष के विषय में निर्णयात्मक कुछ कहना परम कठिन हो गया है। वस्तुतः यह अश्वघोष चाहे बोधिसत्व अश्वघोष हों, या स्थविर अश्वघोष अथवा चाहे कवि अश्वघोष हों, निश्चय ही वह ब्राह्मण था और बौद्ध साहित्य से प्रभावित होकर बौद्ध धर्म में दीक्षित हो गया था। इसका प्रमाण उनकी कृतियां (बुद्धचरितम् और सौन्दरानन्द) हैं। इस विषय में सभी विद्वानों का एक मत प्राप्त होता है कि अश्वघोष का जन्म साकेत के निवासी ब्राह्मण वंश में हुआ और उनकी माता का नाम सुवर्णाक्षी था। अश्वघोष की उपदेश-वाणी इतनी मधुर थी कि घोड़े भी हिनहिनाना छोड़कर इनके उपदेशों को सुनते थे।

अश्वघोष की प्रायः सभी रचनायें नष्ट हो चुकी थीं। इसका कारण यह है कि कवि ने अपने जीवन के अन्तिम क्षणों को गान्धार देश में व्यतीत किया। यद्यपि गान्धार देश भारत की सीमा के अन्तर्गत ही था तथापि वह अपनी स्वतन्त्र प्रभुसत्ता में पनपता रहा। मध्य एशिया में उपलब्ध "शारिपुत्र-प्रकरण" नामक ग्रन्थ भी इस अनुमान में सहायक सिद्ध होता है। अतः अश्वघोष ने अपने जीवन के अन्तिम दिनों को गान्धार देश में व्यतीत किया।

अश्वघोष के दर्शनशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ एवं उनके महाकाव्य आदि कृतियां चीनी या तिब्बती भाषा में अनुवाद के रूप में सुरक्षित हैं। उनकी कृतियों की मूल पाण्डुलिपियां समय समय पर भारत से विदेशों को ले जाई गई।

उनकी कृतियां उनकी अद्भुत प्रतिभा और प्रकाण्ड विद्वत्ता की परिचायिका हैं। अश्वघोष ने अपनी काव्यमयी सरस भाषा के द्वारा बौद्ध धर्म के गूढ़ रहस्यों को साधारण जनता के हृदयों पर अङ्कित करने में पूर्ण सफलता प्राप्त की। वास्तव में अश्वघोष जितने दार्शनिक थे उससे भी अधिक महाकवि थे। अतः उनमें दार्शनिकता और कवित्व का अपूर्व समन्वय था।

अश्वघोष का स्थिति काल :

भारतीय प्राचीन कवियों के समान ही अश्वघोष ने अपनी कृतियों में कहीं भी अपने समय आदि का कोई उल्लेख नहीं किया है। केवल कवि की रचना सौन्दरानन्द में उनकी माता का नाम सुवर्णाक्षी और जन्म-स्थान साकेत का संकेत मिलता है। इसके अतिरिक्त उन्होंने कहीं कुछ भी ऐसा संकेत नहीं किया जिससे उनके जीवन काल आदि पर प्रकाश पड़ता।

अश्वघोष का समय—प्रथम शताब्दी माना जाता है, इसके समर्थन में निम्नलिखित बातें दर्शनीय हैं—

(१) चीनी और तिब्बती भाषा में निबद्ध साहित्य के आधार पर यह सिद्ध होता है कि अश्वघोष सम्राट् कनिष्क की सभा के राजकवि ही नहीं थे अपितु कनिष्क के राजगुरु भी थे। चीनी परम्परा एवं ऐतिहासिक मान्यता के अनुसार कनिष्क ने जिस समय मगध नरेश पर आक्रमण करके और पराजित करके

शर्तों पर छोड़ दिया था। ये दो शर्तें यह थीं कि (१) प्रथम तो बौद्ध धर्म की दीक्षा ग्रहण करनी होगी और (२) दूसरी शर्त में अश्वघोष को मगध से पेशावर ले जाने की बात कही गई है। मगध नरेश ने सम्राट् कनिष्क की इन दोनों शर्तों को स्वीकार करके आत्म-रक्षा की थी।

(२) वैभाषिक सम्प्रदाय के "विभाषा" नामक भाष्य ग्रन्थ की रचना कराने के लिये कनिष्क ने काश्मीर में एक चौथी "बौद्ध संगीति" का गठन किया था। इस बौद्ध सगीति के अध्यक्ष पद पर अश्वघोष को नियुक्त किया था।

(३) अश्वघोष नागार्जुन से पूर्ववर्ती थे। नागार्जुन का समय द्वितीय शताब्दी निश्चित किया जा चुका है।

(४) ईसा की पांचवीं शताब्दी में अश्वघोष के महाकाव्य बुद्धचरित का चीनी भाषा में अनुवाद किया जा चुका था। इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि भारत में रचित बुद्धचरित को अपने देश के बाहर प्रसिद्धि प्राप्त करने में कई सौ वर्ष लगे होंगे। इससे भी स्पष्ट होता है कि महाकवि अश्वघोष का समय प्रथम शताब्दी रहा होगा, तभी बुद्धचरित का अनुवाद चीनी भाषा में पांचवीं शताब्दी में सम्पन्न हो सका होगा।

(५) मध्य एशिया मे प्राप्त अश्वघोष कृत "शारिपुत्रप्रकरण" को आधार मानकर प्रो० लूडर्स ने भी यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि "शारिपुत्र-प्रकरण" का प्रणेता अश्वघोष को कनिष्क के समकालीन मानना अधिक उपयुक्त है। अश्वघोष की दो रचनाओं के साथ (१) बुद्ध-चरितम् और (२) सौन्दरानन्द के साथ, (३) तृतीय रचना "शारिपुत्रप्रकरण" मानी जाती है जिसका नाम "शारद्वतीपुत्रप्रकरण" है, यह महाकवि का पूर्ण नाटक है परन्तु आजकल पूर्ण रूप में उपलब्ध नहीं है, कहीं कहीं इसके कुछ अश ही प्राप्त होते हैं। अतः प्रो० लूडर्स के मतानुसार अश्वघोष कनिष्क के समकालीन थे।

(६) कतिपय समालोचक विद्वानों ने मातृचेट कृत "शतपंचाशिका" की शैली को अश्वघोष की शैली से प्रभावित मानते हैं। डा० जान्स्टन महोदय के

मतानुसार मातृचेट सम्राट् कनिष्क के सम सामयिक थे। इस प्रकार डॉ० जॉन्स्टन महोदय की मान्यता के अनुसार मातृचेट और अश्वघोष दोनों समकालीन रहे होंगे अथवा कुछ ही वर्षों का अन्तर रहा होगा।

(७) अश्वघोष ने बुद्धचरित के २८ वें सर्ग के अन्त में मौर्य वंश की उज्ज्वल कीर्ति का तथा सम्राट् अशोक के स्तूपों का संकेत किया है। इससे यह कहना चाहिये कि अश्वघोष सम्राट् अशोक के बाद हुए अर्थात् २७३—२३२ ई० पूर्व अश्वघोष का समय होना चाहिये।

(८) अश्वघोष के समय की खोज करने वाले विद्वान् समीक्षकों में "सिलवांलेवी" का नाम आदर के साथ स्मरण किया जाता है। आपने चीनी भाषा के अनुवादों का सम्यक् विवेचन करके अश्वघोष को सम्राट् कनिष्क का समकालीन स्वीकार किया।

(९) कुछ समीक्षक अश्वघोष को तुखारा के राजा चन्दन कनिष्क का समकालीन मानते हैं। परन्तु इस मत के समर्थन में कोई प्रमाण व प्रबल तर्क नहीं प्राप्त होते हैं अतः यह अमान्य हो चुका है।

(१०) **टाम्स महोदय** का मत है कि कनिष्क तथा कुषाण दोनों भिन्न नहीं हैं अपितु दोनों एक ही थे। कनिष्क ने साकेत पर आक्रमण किया जिससे साकेत निवासी अश्वघोष से कनिष्क का परिचय हुआ और गुणग्राही कनिष्क अश्वघोष को अपने साथ पेशावर ले गया। अतः टाम्स महोदय के मत से भी यही सिद्ध होता है कि अश्वघोष कनिष्क के समकालीन थे।

(११) डा० विद्याचरण लाहा ने महाकवि के समय निर्धारण में पर्याप्त परिश्रम किया है। चीनी यात्री इत्सिंग ने अश्वघोष को एक सम्मानित आचार्य के रूप में स्वीकार किया है। डा० तारानाथ ने तीन अश्वघोषों के नामों का उल्लेख किया है और अश्वघोष के शिष्य नागार्जुन ने ६ अश्वघोष नामधारी विद्वानों का उल्लेख किया है। चीनी तथा तिब्बती भाषा के साहित्य में भी दो अश्वघोषों के नाम का उल्लेख किया गया है। इस स्थिति में अश्वघोष का समय और अधिक उलझ जाता है कि बुद्धचरित आदि के रचयिता कौन अश्वघोष हैं और उनका समय आदि क्या है?

(१२) कुछ समीक्षकों का कथन है कि बुद्ध भगवान् के निर्वाण पद प्राप्त करने के ३०० वर्ष बाद अश्वघोष का जन्म हुआ।

"महाप्रज्ञा परिमिता" की टीका में अश्वघोप का जन्म बुद्ध के निर्वाण के ३७५ वर्ष बाद निर्धारित किया गया है। अब यह प्रश्न बड़ी जटिलता के साथ समीक्षकों के समक्ष उपस्थित हो गया कि बुद्धचरितम् और सौन्दरानन्द के प्रणेता महाकवि कौन अश्वघोष हैं? इस जटिल प्रश्न का समाधान करने के लिये डॉ० लाहा ने तीन अश्वघोषों में (१) प्रथम स्थविर अश्वघोष और (२) द्वितीय अश्वघोंपों का जन्म बुद्ध के निर्वाण के ३०० वर्ष अथवा ३७५ वर्ष बाद हुआ होगा ऐसा माना है। (३) तृतीया अश्वघोप का जन्म बुद्ध के निर्वाण के लगभग ६०० वर्ष बाद माना है, तृतीय अश्वघोष ने "श्रद्धोत्पादकशास्त्र" की रचना की है। इन तीनों अश्वघोषों में स्थविर अर्थात् प्रथम अश्वघोष को ही बुद्धचरितम् सौन्दरानन्द आदि का रचयिता माना है। स्थविर अश्वघोष को ही भिक्षु कहा जाता था, और प्रथम अश्वघोष ने ही, हीन सम्प्रदाय का अनुसरण किया था। डा० लाहा ने अश्वघोष तथा मातृचेट को भिन्न भिन्न दो व्यक्ति माना है और दोनों ही कनिष्क के समकालीन थे।

डॉ० जानस्टन ने भी मातृचेट और अश्वघोष दोनों को कनिष्क का समकालीन माना है। जानस्टन ने अपनी बुद्धचरितम् की भूमिका में उक्त मत का उल्लेख किया है। बुद्धचरितम् के एक श्लोक की और मातृचेट कृत संगीति की व्याख्या में लिखित पंक्ति को समानता से यही स्पष्ट होता है कि दोनों अश्वघोष और मातृचेट समकालीन थे। उदाहरणार्थ बुद्धचरित के श्लोक की पंक्ति इस प्रकार है।

व्यवसाय द्वितीयेन गुप्तपदमनन्तरम्।
सोऽश्वत्थभूतं प्रययौ............॥

मातृचेट की "संगीति" की व्याख्या में लिखित पंक्ति निम्न प्रकार देखिये।

व्यवसाय द्वितीयेन प्राप्तं पदमनन्तरम्।

इन पंक्तियों से दोनों में समानता स्पष्ट प्रतीत होती है। यद्यपि सभी

समीक्षक विद्वान् मातृचेट और अश्वघोष को समकालीन मानते हैं। परन्तु कुछ विद्वान् मातृचेट को अश्वघोष से पहले और कुछ विद्वान् अश्वघोष के बाद मातृचेट को स्वीकार करते हैं।

अब तक उपर्युक्त विवेचन से हम इस तथ्य पर पहुंचते हैं कि अश्वघोष कनिष्क के समकालीन थे। अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि कनिष्क का समय क्या था ? जब तक कनिष्क का समय निश्चित न हो जाय तब तक अश्वघोष का समय निश्चित रूप से निर्धारित नहीं किया जा सकता है। कनिष्क के समय के सम्बन्ध में भी समीक्षकों में एक मत प्राप्त नहीं होता है।

विण्टरनिट्ज ने प्रबल प्रमाणों एवं तर्कों के द्वारा कनिष्क का समय निर्धारित करते हुए अपना मत व्यक्त किया है कि सम्राट् कनिष्क ने १२५ ई० में सिंहासन संभाला। अतः विण्टरनिट्ज के अनुसार अश्वघोष का समय १२५ ई० के आसपास होना चाहिये।

वि० स्मिथ महोदय ने कनिष्क का समय ८१ ई० के लगभग स्वीकार किया है।

(१४) पुरातत्व विभाग के अन्वेषकों का निर्णय है कि कनिष्क का जन्म प्रथम शताब्दी के अन्त तथा द्वितीय शताब्दी के प्रारम्भ में मानना उचित है। इस निर्णय को आधार मानकर मार्शल, स्मिथ, स्टेनकोनो, आदि समीक्षक कनिष्क का समय प्रथम शताब्दी का अन्त और द्वितीय शताब्दी का प्रारम्भ स्वीकार करते हैं ? अतः अश्वघोष का भी यही समय होना चाहिए जो कनिष्क का समय है।

(१५) परन्तु इस मत के विपरीत मत को मानने वाले भारतीय विद्वान् भण्डारकर कनिष्क का समय तृतीय शताब्दी मानते हैं।

(१६) विद्या भूषण ने कनिष्क का समय ३२० ई० पूर्व स्वीकार किया है।

(१७) डॉ० कीथ महोदय ने अश्वघोष का समय १०० ई० के लगभग स्वीकार किया है। प्रायः अधिकतर विद्वान् समीक्षक कनिष्क को शक सम्वत् का

प्रवर्त्तक मानते हैं। यह शक सम्वत् ७८ ई० से प्रारम्भ होता है। ओल्डन वर्ग, फर्गुसन, रैप्सन, आदि समीक्षक कनिष्क का समय ईसा की प्रथम शताब्दी मानते हैं।

(१८) संमुऊल ब्रील महोदय ने महाकवि अश्वघोष का समय ७८ ई० स्वीकार किया है। चीन से भारत आये हुये कुछ चीनी यात्री अश्वघोष का समय ७० ई० स्वीकार करते हैं।

(१९) कुछ विद्वान् समीक्षकों ने अश्वघोष का समय प्रथम शताब्दी स्वीकार करते हुए कहा है कि अश्वघोष नागार्जुन से पहले हुए क्योंकि यह संकेत प्राप्त होता है कि अश्वघोष नागार्जुन के गुरु थे। नागार्जुन का नाम "जगय्यापेटा स्तूप" में उत्कीर्ण है। जो माम नागार्जुन के तृतीय शिष्य ने उत्कीर्ण कराया था। यह लेख स्तूप में तृतीय शताब्दी में उत्कीर्ण कराया गया है, इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि स्तूप में नानार्जुन की शिष्य परम्परा के तृतीय शिष्य परम्परा के शिष्य ने नागार्जुन का नाम उत्कीर्ण कराया था। इससे यह सम्भव है कि तृतीय शिष्य परम्परा तक लगभग ३०० वर्ष का समय लग गया। अतः अश्वघोष का समय कनिष्क के समकालीन और ईसा की प्रथम शताब्दी मानना उचित है।

बुद्धचरितम् के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि अश्वघोष ने बुद्धचरित के अन्तिम सर्ग में अशोक की 'संगीति' का उल्लेख किया है। जैसा कि बुद्धचरित के इस निम्नलिखित श्लोक से संकेत प्राप्त होता है कि—

इसद्भिर्यत्कृतं कर्म कलुषं कलुषात्मभिः।
एतत्परिणते काले क्रोशद्भिरनुभूतले ॥ बु० च० १४, १७

अपि च—

सुखं स्यादिति यत्कर्म कृतं दुःखनिवृत्तये।
फलं तस्येदमवशैर्दुःखमेवोपभुज्यते ॥ बु० च० १४, १७

इससे यह सिद्ध होता है कि अश्वघोष के ऊपर अशोक की शिक्षा का प्रभाव पड़ा और अशोक की शिक्षा का अश्वघोष ने अनुकरण किया है।

अतः अश्वघोष अशोक के बाद हुए। अशोक का समय २६५–२११ ई॰ पूर्व माना जाता है।

कुछ विद्वानों ने कालिदास और अश्वघोष की काव्य-कला की समीक्षा करते हुए कालिदास से अश्वघोष की काव्य-कला को पूर्ववर्ती माना है। अतः अश्वघोष कालिदास से पहले हुए ऐसा माना जाता है, परन्तु इस विषय में अभी तक विद्वानों में निर्णयात्मक मत स्थिर नहीं हो पाया है कि कालिदास पूर्ववर्ती हैं या अश्वघोष। यह अभी सन्दिग्ध है, तथापि कुछ विद्वानों का यह तर्क है कि कालिदास की काव्य-कला में जो उदात्तता एवं भाव-प्रवणता, माधुर्य एवं प्राञ्जलता प्राप्त होती है, वह अश्वघोष में नहीं प्राप्त होती है। अतः अश्वघोष की काव्य-कला कालिदास के समान पूर्ण विकसित न होने के कारण अश्वघोष को कालिदास से पूर्ववर्ती स्वीकार करने में अधिक औचित्य प्रतीत होता है। अस्तु चाहे कालिदास पूर्ववर्ती हों या अश्वघोष।

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि बुद्धचरितम् और सौन्दरानन्द आदि के रचयिता अश्वघोष कनिष्क के समकालीन थे और उनका समय ईसा की प्रथम शताब्दी है।

अश्वघोष की सम्प्रदाय निरपेक्षता—

अश्वघोष की धर्म सम्बन्धी मान्यता के विषय में पर्याप्त मतभेद प्राप्त होता है, परन्तु यह सुनिश्चित है कि वे महाकवि और अपने समय के प्रतिष्ठित आचार्य, प्रतिभासम्पन्न अद्वितीय विद्वान्, महातार्किक और दार्शनिक थे तथा बौद्ध-धर्म के मानने वाले प्रतिष्ठित विद्वान् थे। अश्वघोष की रचनाओं में हीनयान और महायान दोनों सम्प्रदायों की विचारधारा का दर्शन प्राप्त होता है। यदि यह कहें कि वे हीनयानी सर्वास्तिवादी विद्वान् थे तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

कनिष्क की चौथी बौद्ध संगीति में 'विभाषा' लिखने के लिये जिन विद्वानों को देशभर से आमन्त्रित किया गया था उन विद्वानों के संयोजक अश्वघोष ही थे। अतः अश्वघोष वैभाषिक भी सिद्ध होते हैं तो दूसरी ओर दृष्टिपात करने

पर वे महायान के योगाचार सम्प्रदाय के विनाशवादी दार्शनिक सिद्ध होते हैं। हीनयान की कतिपय स्खलतियों का परिमार्जन करने हेतु अश्वघोष ने 'महायान श्रद्धोत्पादकशास्त्र' की रचना की थी। नागार्जुन ने इसी ग्रन्थ से प्रेरणा प्राप्त करके माध्यमिक शून्यवाद की रचना की थी। बौद्ध दर्शन में अश्वघोष के 'महायान श्रद्धोत्पादकशास्त्र' नामक ग्रन्थ को महायान सम्प्रदाय का आधार स्तम्भ माना गया है।

जापानी परम्परा के अनुसार अश्वघोष को 'अवतंसक सूत्र' सम्प्रदाय का प्रथम और बौद्ध-धर्म का बारहवां गुरु माना गया है। यह सम्प्रदाय महायान से सम्बन्धित है। इसके अतिरिक्त 'सुखावती' नामक सम्प्रदाय से भी अश्वघोष का नाम जोड़ा जाता है। यह सुखावती सम्प्रदाय महायान का ही एक रूप है।

अश्वघोष की कृतियों का अनुशीलन करने पर यह ज्ञात होता है कि वे किसी एक सम्प्रदाय के नहीं थे अपितु वे महासांघिक अथवा बहुश्रुतीय थे या सर्वास्तिवादी स्थविर थे अथवा योगाचार सम्प्रदाय से सम्बन्धित थे। इन मान्यताओं में सत्यता अवश्य है क्योंकि आपकी रचनाओं में और व्यक्तित्व में उपर्युक्त सभी विचार-धाराओं का अपूर्व सम्मिश्रण प्राप्त होता है। इसका एकमात्र कारण आपकी उदात्त भावना ही प्रतीत होती है। यही कारण है कि तथागत के अनुयायियों द्वारा चलाये गये हीनयान और महायान दोनों सम्प्रदायों से समान आदर भाव और प्रेम था, क्योंकि उनमें सब कहीं आपने बुद्ध का ही साक्षात्कार किया। इसके अतिरिक्त अश्वघोष की धारणा थी कि एक ही व्यक्ति विभिन्न आध्यात्मिक दशाओं में कभी हीन मतावलम्बी और कभी महायान मतावलम्बी हो सकता है। अश्वघोष ने अपनी इस मान्यता को अपने जीवन में उतार कर दिखा दिया। 'यूआनच्वांग' ने आपकी उदात्त एवं उच्च विकासवादी दृष्टिकोण से प्रभावित होकर कहा है कि अश्वघोष का आध्यात्मिक ज्ञान श्रावकयान, बौद्धयान और बोधिसत्वयान सब में समान रूप से व्याप्त था। इस प्रकार अश्वघोष की कृतियों में जिन विभिन्न विचार-धाराओं का

दर्शन प्राप्त होता है उनका अनुशीलन करने पर यह कहना कठिन हो जाता है कि वे किस विचारधारा को अधिक मानते थे। अतः स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि अश्वघोष सम्प्रदाय निरपेक्ष एवं स्वतन्त्र विचारक प्रतिभा सम्पन्न विलक्षण विद्वान् थे।

अश्वघोष की रचनायें—

अश्वघोष की रचनाओं के सम्बन्ध में भी विद्वानों में मतैक्य नहीं है। चीनी परम्परा के अनुसार अश्वघोष ने जिन ग्रन्थों की रचना की है उनकी सूची ७ वीं शताब्दी में चीनी यात्री इत्सिग ने दी है। इत्सिग के मतानुसार अश्वघोष ने चार ग्रन्थों का प्रणयन किया है। जिनके नाम—(१) महायान श्रद्धोत्पादसंग्रह, (२) वज्रसूची, (३) गण्डीस्तोत्र व्याख्या और (४) सूत्रालंकार हैं। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त अश्वघोष ने (१) बुद्धचरितम् और (२) सौन्दरानन्द नामक दो महाकाव्य तथा 'शारिपुत्र प्रकरण' (शारद्वती पुत्र प्रकरण) नामक नाटक भी लिखा है। अश्वघोष के नाम से 'राष्ट्रपाल' और 'उर्वशी वियोग' नामक दो नाटकों का भी उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त अश्वघोष के नाम से यत्र तत्र १६ ग्रन्थों की संख्या प्राप्त होती है, परन्तु इन १६ ग्रन्थों का रचयिता अश्वघोष को स्वीकार करना बड़ा कठिन प्रतीत होता है, क्योंकि जब अश्वघोष ने बौद्ध-धर्म की दीक्षा ग्रहण करली तो अश्वघोष की प्रतिभा एवं प्रकाण्ड वैदुष्य का लाभ उठाकर अनेक बौद्ध मतानुयायी विद्वानों ने रचना करके अश्वघोष के नाम से प्रचलित किया अर्थात् अश्वघोष के नाम से प्रकाशित करा दिया। अश्वघोष की कृतियों के विषय में पर्याप्त अन्वेषण करने के अनन्तर विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि अश्वघोष की केवल तीन ही रचनायें हैं, उनके नाम (१) बुद्धचरितम्, (२) सौन्दरानन्द और (३) शारिपुत्र-प्रकरण (शारद्वतीपुत्रप्रकरण) हैं।

अश्वघोष के नाम से उद्धृत "महायानश्रद्धोत्पादसंग्रह" नामक बौद्धदर्शन सम्बन्धी ग्रन्थ चीनी भाषा में अनुवाद रूप में मिलता है जिसकी रचना "परमार्थ" नामक विद्वान् ने की है जिसके अंग्रेजी में दो अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं।

पहला अनुवाद जापानी विद्वान् ती० सुजुकी ने किया और दूसरा अनुवाद रिचर्डज ने किया है। "महायानश्रद्धोत्पादसंग्रह" नामक ग्रंथ लेकर संस्कृत में दो अश्वघोषों की कल्पना की गई है कि प्रथम अश्वघोष (१) बुद्धचरितम्, (२) सौन्दरानन्द के रचयिता और कनिष्क की चौथी 'बौद्ध-संगीति" के संयोजक माने जाते हैं। द्वितीय अश्वघोष ने "महायान श्रद्धोत्पादसंग्रह" नामक बौद्ध-दर्शन सम्बन्धी ग्रन्थ का प्रणयन किया जिसका समय ४०० ई० बाद माना जाता है। दो अश्वघोषों की मान्यता को स्वीकार करने वाले विद्वानों में तकाकुसु, विण्टरनिट्ज, राहुल सांकृत्यायन और डा० राधाकृष्णन् आदि विद्वान् प्रमुख माने जाते हैं। इन विद्वानों का तर्क है कि "महायानश्रद्धोत्पादसंग्रह" नामक बौद्धदर्शन के ग्रन्थ में शून्यवाद का विवेचन बहुत विस्तृत रूप में किया गया है। वह शून्यवाद के प्रथम आचार्य नागार्जुन (२०० ई०) तथा विज्ञानवाद के प्रथम आचार्य असंग एवं वसुबन्धु (४०० ई०) के पहले का नहीं माना जा सकता है।

इस मत के विपरीत डॉ० ती० सुजुकी का कथन है कि "महायान-श्रद्धोत्पादसंग्रह" नामक बौद्धदर्शन के ग्रन्थ का प्रणयन अश्वघोष ने किया है। उनका तर्क है कि आचार्य नागार्जुन से भी पहले ई० पू० प्रथम शताब्दी में प्रणीत "अष्टसाहस्त्रिकाप्रज्ञापारमिता" नामक ग्रन्थ ही शून्य विचारधारा का प्रथम ग्रन्थ है। इस प्रकार उपर्युक्त मत की मान्यता सारहीन हो जाती है। अतः "महायानश्रद्धोत्पादसंग्रह" नामक ग्रन्थ अश्वघोष की प्रामाणिक रचना है। "अष्टसाहस्त्रिकाप्रज्ञापरिमिता" नामक ग्रन्थ से ही शून्यवाद की प्रेरणा प्राप्त करके अश्वघोष ने "महायानश्रद्धोत्पादसंग्रह" की रचना की है। इस मत के समर्थक विद्वान् अश्वघोष को एक ही व्यक्ति स्वीकार करते हैं। चीन में सुरक्षित "महायानश्रद्धोत्पादसंग्रह" की प्रति के अनुसार इसका कर्ता अश्वघोष को ही माना जाता है। ह्वेनसांग ने भी इस ग्रन्थ का प्रणेता अश्वघोष को ही माना है।

अश्वघोष की द्वितीय रचना "वज्रसूची" या "वज्रच्छेदिका" अथवा "वज्रसूचिकोपनिषद्" चीनी परम्परा के अनुसार अश्वघोष की कृति नहीं मानी जाती है। वज्रसूची नामक ग्रन्थ में वज्र की सुई के समान तीक्ष्ण दृष्टि से

वर्णभेद का विवेचन किया गया है। इस ग्रन्थ में श्रुति, स्मृति तथा महाभारत के उद्धरणों को प्रस्तुत करते हुए वर्ण-व्यवस्था की तीव्र भर्त्सना की गई है। इसमें समानता का जो आदर्श रूप प्रस्तुत किया गया है, उसको लोक में बहुत सम्मान प्राप्त हुआ। कुछ विद्वानों का कहना है कि इसकी रचना अश्वघोष ने नहीं की है। इसके पांच कारण हैं जो निम्न प्रकार हैं—

(१) वज्रसूची में अश्वघोष जैसी रचना शैली का अभाव है।

(६) मानवता की एकता प्रतिपादन शैली प्राचीन नहीं है अपितु आधुनिक है।

(३) इत्सिग ने "वज्रसूची" का नाम अश्वघोष की कृतियों में उल्लेख नहीं किया है।

(४) चीनी एवं तिब्बती परम्परा भी "वज्रसूची" की रचना को अश्वघोष की नहीं मानती है।

(५) ९७३—९८१ ई० के मध्य वज्रसूची का अनुवाद चीनी भाषा में किया गया है जिसमें इसको धर्मकीर्ति की रचना माना गया है। इन सब मतों के विपरीत राहुल जी ने वज्रसूची को अश्वघोष की ही कृति स्वीकार की है।

गण्डीस्तोत्र नामक ग्रन्थ को इत्सिग और विण्टरनिट्ज अश्वघोष की रचना स्वीकार करते हैं। इस ग्रन्थ की रचना केवल २९ स्रग्धरा छन्दों में की गई है, यह लघुकाय कृति है। इसकी रचना के सम्बन्ध में भी विद्वानों में मतभेद है। आज विद्वानों का बहुमत इसको अश्वघोष की कृति नहीं मानता है। अतः यह अश्वघोष की कृति नहीं है।

अश्वघोष के नाम से जोड़े जाने वाले चतुर्थ ग्रन्थ सूत्रालङ्कार का चीनी अनुवाद कुमारजीव ने ४०५ ई० में किया है। कुमारजीव ने सूत्रालङ्कार की रचना अश्वघोष कृत स्वीकार की है, परन्तु इसके विपरीत कुछ वर्ष पूर्व डॉ० लूडर्स ने मध्य एशिया में प्राप्त इस ग्रन्थ के अन्य हस्तलेखों का अनुशीलन करके यह सिद्ध कर दिया है कि सूत्रालङ्कार अश्वघोष की कृति नहीं है अपितु तक्षशिला के निवासी सौत्रान्तिक मत के संस्थापक बौद्ध विद्वान् कुमारलात

अथवा कुमारलब्ध की रचना है। लूडर्स के इस मत के प्रमाणार्थ मध्य एशिया से कुमारलात की एक खण्डित प्रति "कल्पनामण्डितिकादृष्टान्तपंक्ति" को प्राप्त करके १९२६ ई० में लिपिजिग से मुद्रित कराकर प्रकाशित कराया। इन दोनों ग्रन्थों की कथा साम्य को देखने से प्रतीत होता है कि ये दोनों कृतियां एक ही विद्वान् की हैं। इसी आधार पर लूडर्स ने "सूत्रालङ्कार" और "कल्पना-मण्डतिकादृष्टान्तपंक्ति" को कुमारलात की रचना स्वीकार करके घोषणा कर दी कि सूत्रालङ्कार अश्वघोष की रचना ही है, परन्तु वास्तविकता इससे सर्वथा विपरीत है। वास्तव में कल्पनामण्डतिका की रचना सूत्रालङ्कार की अनुकृति है। ४०५ ई० में कुमारजीव ने जिस सूत्रालङ्कार का अनुवाद किया है वह सूत्रालङ्कार नामक ग्रन्थ अश्वघोष की ही कृति है।

कालगति के अनुसार यह ग्रन्थ कब लुप्त हो गया, यह नहीं कहा जा सकता है। हूबर महोदय ने कुमारजीवकृत चीनी अनुवाद का पेरिस में फ्रेंच भाषा में अनुवाद १९०८ ई० में प्रकाशित कराया था। इस सूत्रालङ्कार में तत्कालीन पालि जातकों की कथाओं का संग्रह किया गया है और उसमें बौद्ध धर्म के प्रचार एवं प्रसार के महत्वपूर्ण उपायों का उल्लेख किया गया है।

उपर्युक्त विवेचन से यह निश्चित नहीं हो पाया है कि अश्वघोष का कुल कृतियां कितनी हैं और उनके नाम क्या हैं? टाम्स महोदय ने अश्वघोष कृत छः ग्रन्थों का नाम लिखा है। वे नाम इस प्रकार हैं—

(१) बुद्धचरितम्, (२) सौन्दरानन्द, (३) शारिपुत्र प्रकरण, (४) गण्डी-स्तोत्रगाथा और (५) वज्रसूची।

स्वर्गीय डॉ० सिलवालेवी के अनुसार अश्वघोष की एक अन्य रचना है जिसका नाम "राष्ट्रपाल" नामक नाटक है। इस प्रकार अश्वघोष की ६ रचनायें हो जाती हैं। यदि इत्सिंग के मत को मान लें और "सूत्रालंकार" तथा "महायान श्रद्धोत्पादसंग्रह" नामक ग्रन्थों को अश्वघोष की कृतियों में जोड़ दें तो अश्वघोष की कुल ८ कृतियां हो जाती हैं।

नेञ्जो के बौद्ध त्रिपिटक चीनी अनुवाद का अवलोकन करने से ज्ञात

होता है। त्रिपिटक के चीनी अनुवाद में अश्वघोष कृत ६ रचानओं का उल्लेख है।

वास्तविकता यह है कि अश्वघोष की केवल तीन ही कृतिया हैं, शेष कृतियों को विद्वानों ने समाज में आदर प्राप्त कराने के उद्देश्य से प्रतिभा सम्पन्न प्रकाण्ड विद्वान् एवं महाकवि अश्वघोष के नाम से समय समय पर रचना करके जोड़ दिया है। अतः यह निश्चित हो जाता है कि 'बुद्धचरित', 'सौन्दरानन्द' और 'शारिपुत्र प्रकरण' ही अश्वघोष की रचनायें हैं। इनमें प्रथम दो 'बुद्धचरितम्' और 'सौन्दरानन्द' महाकाव्य हैं तथा तृतीय रचना 'शारिपुत्र प्रकरण' नाटक है।

अश्वघोष और नाटक—

अश्वघोष प्रतिभा सम्पन्न महाकवि और दार्शनिक प्रकाण्ड एवं लब्ध प्रतिष्ठित विद्वान् थे और साथ ही सगीत शास्त्र के अधिकारी विद्वान्, नाटककार और कुशल अभिनेता थे।

अश्वघोष के समय गान्धार देश अथवा भारत में जिन नाटकों का समय समय पर अभिनय होता था, उन पर यूनानी प्रभाव था अर्थात् जो नाटक खेले जाते थे उन पर यूनानी प्रभाव था। यही कारण है कि नाटक के पात्रों की वेष-भूषा के वस्त्र आदि पर यूनानी कारीगरी होती थी तथा उनके यूनानी वस्त्र होते थे। इस यूनानी नाट्य परम्परा से प्रभावित होकर ही अश्वघोष ने नाट्य साहित्य का प्रणयन किया। अश्वघोष के नाटकों की भाषा संस्कृत और प्राकृत थी। राहुल सांकृत्यायन के मतानुसार अश्वघोष का पहला नाटक 'उर्वशी वियोग' था। उर-वसी अर्थात् सदा हृदय में निवास करने वाली वह अप (सरयू के जल में) सरा (तैरने वाली) थी। इससे यह प्रतीत होता है कि इस नाटक की रचना का मुख्य लक्ष्य महाकवि की प्रेयसी प्रभा ही थी। उर्वशी-वियोग नामक नाटक की संस्कृत और प्राकृत मिश्रित भाषा थी। आजकल यह नाटक प्राप्त नहीं होता है। राहुल जी ने इस नाटक को संस्कृत साहित्य का प्रथम नाटक और अश्वघोष को संस्कृत का प्रथम नाटककार माना है। इसके अतिरिक्त अश्वघोष ने दो अन्य नाटकों का प्रणयन किया है, जिनके नाम "राष्ट्रपाल" और "शारिपुत्र" थे।

राहुल जी ने अश्वघोष कृत उर्वशी-वियोग नामक नाटक के विषय में कहा है कि वह बहुत अच्छा खेला गया और एक से भी अधिक बार। साकेत के सभी सम्भ्रान्त नागरिकों ने उसे देखा। उन्हें कभी ख्याल भी नहीं था कि अभिनय की कला इतनी पूर्ण, इतनी उच्च हो सकती है। अश्वघोष ने अन्तिम यवनिकापात के समय कई बार दोहराया था कि "मैंने सब कुछ यवन रंगमंच से लिया है" किन्तु उसके नाटक इतने स्वभूमिज थे कि कोई उन पर किसी प्रकार के विदेशी प्रभाव की गन्ध भी नहीं पाता था।

अश्वघोष को नाटक के क्षेत्र में भी पर्याप्त ख्याति प्राप्त हुई। काव्य के क्षेत्र में अश्वघोष ने पहले ही समस्त भारत में प्रचुर ख्याति एवं प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली थी। नाट्य-साहित्य के प्रकाश में आते ही अश्वघोष की कला में और अधिक चमक आ गई। समाज में अश्वघोष की नाट्य-कला का कितना अधिक सम्मान हुआ और जनता ने कितनी उत्सुकता से उनके नाटकों का अभिनय देखा और किया। इस सम्बन्ध में राहुल जी का निम्न कथन देखिये—

जिस तरह अश्वघोष के संस्कृत-प्राकृत गीत और कवितायें साकेत और कोशल की सीमा पार कर गये थे, उसके नाटक उससे भी दूर तक फैल गये। उज्जयिनी, दशपुर, सुप्पारक, भरुकच्छ, पाटलिपुत्र जैसे महानगरों में, जहां यवनों की संख्या और उनकी नाट्य शालायें थीं, उनके नाटक रंगमंच पर बहुत जल्द पहुंचे और फिर सारे ही सामन्तों और व्यापारियों में बहुत प्रिय हुए।

शारिपुत्र प्रकरण—

डॉ० लूडर्स ने अश्वघोष कृत 'शारिपुत्र' नामक प्रकरण नाटक की खण्डित हस्तलिखित प्रति मध्य एशिया के तुर्फान नामक स्थान से प्राप्त करके प्रकाशित कराया यह खण्डित प्रति ताड़ पत्रों पर लिखी हुई थी, इस प्रति के साथ ही 'प्रबोध चन्द्रोदय" की शैली में लिखित एक नाटक भी प्राप्त हुआ जिसका नाम ज्ञात नहीं हो सका। इन दोनों नाटकों के विषय में यह कहा जाता है कि रचना-शैली के समानता के आधार पर ये दोनों ही नाटक महाकवि अश्वघोष की ही कृति हैं।

शारिपुत्र की प्राप्त खण्डित प्रति से यह अवश्य सिद्ध होता है कि यह नाटक नौ अंकों का प्रकरण था। शूद्रक कृत मृच्छकटिक की भांति शारिपुत्र के पात्र भी निम्न कोटि के साधारण पात्र हैं अर्थात् मृच्छकटिक के समान धूर्त्त, विट उच्छृंखल, वेश्या, चोर, जुआरी, शराबी और विदूषक आदि अनेक प्रकार के पात्र हैं। शारिपुत्र की कथावस्तु बौद्ध-धर्म से सम्बन्धित है। इस नाटक में भगवान् तथागत मौद्‌गलायन और शारिपुत्र को बौद्ध-धर्म की दीक्षा देकर शिष्य बना लेते हैं। इसके प्रमुख पात्र सोमदत्त, राजकुमार, दास, दासी, दुष्ट, विदूषक और गणिका आदि हैं।

शारिपुत्र नामक नाटक नाट्य भेदों के अनुसार प्रकरण नाटक के अन्तर्गत आता है। प्रकरण की परिभाषा साहित्य दर्पण में विश्वनाथ ने निम्न प्रकार दी है कि—

भवेत्प्रकरणे वृत्तं लौकिकं कविकल्पितम्।
शृङ्गारोऽङ्गी नायकस्तु विप्रोऽमात्योऽथवा वणिक् ॥
सापायधर्म-कामार्थपरो धीर-प्रशान्तकः।
नायिका कुलजा क्वापि वेश्या क्वापि द्वयं क्वचित् ॥
तेन भेदस्त्रयस्तस्य तत्र भेदस्तृतीयकः।
कितवद्यूतकारादिविटचेटक संकुलः ॥

आशय यह है कि प्रकरण की कथावस्तु लोक प्रसिद्ध तथा कवि कल्पना प्रसूत होती है, परन्तु ऐतिहासिक नहीं होती है। इसका मुख्य रस शृंगार होता है, नायक ब्राह्मण, क्षत्रा अथवा वैश्य कुलोत्पन्न होता है। यह नायक स्वभाव से धीर और शान्त होता है। विघ्नों के आने पर भी धर्म, अर्थ काम के साधन में क्रियाशील रहता है। इसकी नायिका कहीं तो उच्च कुलोत्पन्न कन्या होती है और कहीं वेश्या होती है तथा कहीं दोनों होती हैं। प्रकरण में दश अंक तक होते हैं। पञ्च सन्धियों का उचित समावेश किया जाता है। इसके पात्र धूर्त्त, विट, जुआरी, मद्यपी, चेट आदि होते हैं। विलास आदि का सशक्त चित्रण किया जाता है। शृंगार के अतिरिक्त अन्य रसों का भी चित्रण गौण रूप से किया जाता है। प्रकृति चित्रण आदि का भी वर्णन होता है।

इस शारिपुत्र नामक नाटक को "कीथ" ने "गरिएका रूपक" (हेटेरा ड्रामा) कहा है। शारिपुत्र की शैली में लिखित मृच्छकटिक में गणिका रूपकों का स्पष्ट चित्र दृष्टिगोचर होता है। इसके प्रारम्भ में शारिपुत्र अश्वजित साक्षात्कार करने के बाद आकर अपने मित्र विदूषक से तथागत भगवान् बुद्ध के विषय में वार्तालाप करता है। विदूषक शारिपुत्र को बुद्ध जैसे क्षत्रियों से दीक्षा ग्रहण न करने की सम्मति देता है कि ब्राह्मण को क्षत्रियों से दीक्षा ग्रहण नहीं करनी चाहिये। शारिपुत्र ने विदूषक के कथन को अस्वीकार करते हुए कहा कि जिस प्रकार जल से अग्नि अथवा ताप शान्त हो जाती है, उसी प्रकार नीच जाति में उत्पन्न वेश्या आदि के द्वारा प्रदत्त औषधि से बीमारी शान्त हो जाती है। इसके बाद मौद्गलायन शारिपुत्र से मिलता है और उनकी प्रसन्नता का कारण पूछता है। जब मौद्गलायन को यह ज्ञात होता है कि शारिपुत्र बुद्ध के व्यक्तित्व से प्रभावित हैं तो फिर दोनों तथागत बुद्ध के समीप जाते हैं और बुद्ध की शिष्यता स्वीकार करके बौद्ध-धर्मावलम्बी हो जाते हैं। अन्त में शारिपुत्र की तथागत बुद्ध के साथ दार्शनिक बात-चीत के द्वारा नाटक समाप्त हो जाता है। दोनों शिष्यों की प्रशंसा में स्वयं बुद्धदेव भरत वाक्य कहते हैं।

नाटकीय संविधान—

यह हम शारिपुत्र प्रकरण की समीक्षा नाटकीय दृष्टिकोण से करें तो यह ज्ञात होता है कि इसकी रचना नाट्य शास्त्र के नियमों के सर्वथा अनुकूल की गई है। इसका नायक ब्राह्मण कुलोत्पन्न "शारिपुत्र" है जो धीर प्रशान्त नायक की कोटि में आता है। इसकी नायिका एक वेश्या है जिसका चरित्र एक आदर्श नारी के रूप में चित्रित किया गया है। इसमें अंकों का नाम नहीं प्राप्त होता है। इसमें भरत वाक्य नायक के मुख से नहीं कहा गया है अपितु सर्वज्ञ बुद्ध ने भरत वाक्य कहा है। यद्यपि इस सम्बन्ध में कुछ विद्वानों को बुद्ध के मुख से भरत वाक्य का उच्चारण कराना उचित प्रतीत नहीं होता है परन्तु वास्तविकता में नाटककार अश्वघोष ने नायक के मुख से भरत वाक्य न

कहलाकर बुद्ध भगवान् के मुख से कहलवाया है। यह उनकी अद्वितीय प्रतिभा का ही परिचायक है, क्योंकि तथागत भगवान् बुद्ध की उपस्थिति में उनके शिष्य (नायक) से भरत वाक्य कहलाने की अपेक्षा बुद्ध के मुंह से ही कहलवाना उचित है। इसके नायक शारिपुत्र तथा मोद्गलायन और बुद्ध भगवान् तीनों ही संस्कृत बोलते हैं और विदूषक प्राकृत भाषा में वार्तालाप करता है। इसके दो नायक हैं, दोनों ही संस्कृत में बोलते हैं। बुद्ध दो अन्य शिष्य कौण्डिन्य और श्रमणक दोनों संस्कृत में भाषण करते हैं। इसकी भाषा सरल और जटिल है। नाटक अभिनेय नहीं है।

अश्वघोष के अन्य दो नाटक—

शारिपुत्र नामक प्रकरण के साथ दो अन्य नाटकों का संकेत किया जा चुका है, परन्तु इन नाटकों के नाम और कथावस्तु का पूर्ण रूप से कुछ पता नहीं चलता है। प्रथम नाटक में बुद्धि, कीर्ति और घृति आदि के साथ तथागत बुद्ध को प्रस्तुत किया है। इससे यह प्रतीत होता है कि यह अश्वघोष का छाया नाटक रहा होगा। इसके सभी पात्र संस्कृत में वार्तालाप करते हैं।

इसके पश्चात् दूसरे नाटक का भी नाम अज्ञात ही है। इसके पात्रों के नाम निम्न प्रकार हैं—

मगधवती नामक वेश्या, कोमुदगन्ध नामक विदूषक, सोमदत्त, खल, धनंजय, दासी, शारिपुत्र और मोद्गलायन आदि हैं। सम्भवतः इसके नायक सोमदत्त हैं। इस नाटक की कथावस्तु का आधार एक जीर्ण उपवन और वेश्या का घर है। इसके पात्र प्रवहण (गाड़ी) में सवार होकर प्रस्थान करते हैं। वेश्या, दासी, और खल ये तीनों पात्र प्राकृत में बातचीत करते हैं। शेष अन्य सभी पात्र संस्कृत में भाषण करते हैं।

इस प्रकार विवेचन से यह ज्ञात होता है कि अश्वघोष ने इस नाटक की रचना भास के चारुदत्त नामक नाटक के आधार पर की है। इस नाटक की सभी समस्यायें प्रायः शूद्रक के मृच्छकटिक से मिलती हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह निश्चित हो जाता है कि जहां अश्वघोष दार्शनिक एवम् आध्यात्मिक ज्ञान का पूर्ण ज्ञाता था और संगीत कला का मर्मज्ञ एवं अधिकारी विद्वान् तथा महाकवि, तार्किक तथा बौद्ध-धर्म का प्रचारक था तो वहां सामाजिक चित्रों की यथार्थ झांकी नाटकों के माध्यम से चित्रित करने में पूर्ण सफलता प्राप्त की। इसलिये आपके नाट्य कौशल का सम्मान सर्वसाधारण ने आभार प्रकट करते हुए किया है। वस्तुतः अश्वघोष विविध विद्या निष्णात, दार्शनिक तथा तार्किक एवं महाकाव तथा निपुण नाटककार थे। इस विषय में किसी को यत्-किञ्चित् भी सन्देह नहीं है।

सौन्दरानन्द (अश्वघोष का प्रथम महाकाव्य)—

महाकवि अश्वघोष का यह प्रथम महाकाव्य है। सौन्दरानन्द की रचना अठारह सर्गों में की गई है। महामहोपाध्याय श्री हरप्रसाद शास्त्री ने सौन्दरानन्द का सर्वप्रथम सम्पादन करके "बिब्लिवोथिका इण्डिका" में प्रकाशित कराया था। शास्त्री जी ने अथक प्रयास करने के पश्चात् सौन्दरानन्द की दो हस्तलिखित प्रतियों को नेपाल सरकार के राजकीय पुस्तकालय से प्राप्त करके उन्हीं के आधार पर इसका प्रकाशन कराया था। इस महाकाव्य की कथावस्तु विमातृज नन्द की धर्म पत्नी सुन्दरी से सम्बन्धित है। सुन्दरी ने अपने बड़े भाई तथा तथागत बुद्ध के उपदेशों से प्रभावित होकर सांसारिक माया-मोह के बन्धनों का परित्याग करके प्रव्रज्या ग्रहण कर ली थी। यही कथा इस महाकाव्य की आधार शिला है।

सौन्दरानन्द के प्रथम तीन सर्गों में सिद्धार्थ के जन्म से लेकर बुद्धत्व प्राप्त करके कपिलवस्तु लौट आने तक की कथा का आकर्षक वर्णन किया है। चतुर्थ सर्ग में नन्द और सुन्दर के प्रणयबन्धन की कथा वर्णन करते हुए भिक्षार्थ आये हुए तथागत बुद्ध भगवान् के खाली हाथ नन्द के द्वार से लौट जाने की कथा का मार्मिक वर्णन किया गया है। पञ्चम सर्ग में नन्द पश्चाताप करता हुआ बुद्ध की शरण में जाता है और बौद्ध-धर्म की दीक्षा ग्रहण कर लेता है। षष्ठ सर्ग में पति विरह से खिन्न सुन्दरी की मानसिक व्याकुलता का वर्णन किया है।

सप्तम सर्ग में नन्द की मानव सुलभ कमजोरियों का वर्णन करते हुए नन्द की सुन्दरी के प्रति आसक्ति का सरस वर्णन किया गया है। अष्टम तथा नवम सर्ग में एक साथी श्रमण नन्द को उपदेश देता है कि आप उच्च मार्ग को अपनाकर फिर विषय वासना में लिप्त होना चाहते हो जो सर्वथा त्याज्य है। दशम तथा एकादश सर्ग में नन्द की इस आसक्ति को दूर करने के लिये तथागत बुद्ध भगवान् अपनी योग विद्या के बल से नन्द को उड़ाकर स्वर्ग ले जाकर अनुपम सुन्दरी अप्सराओं का दर्शन कराते हैं, जिससे नन्द अपनी पत्नी के प्रति व्यामोह को भूलकर अप्सराओं को प्राप्त करने के लिये बुद्ध के आदेशानुसार तपस्या करता है। द्वादश सर्ग में नन्द की तपस्या का उद्देश्य जानकर एक बौद्ध भिक्षु आकर नन्द का उपहास करता है। फिर नन्द अपने मन को कामुक आसक्ति से हटाकर अपने मन को बुद्धत्व की ओर प्रेरित करता है और फिर वह सर्वस्व परित्याग कर बुद्ध का एकमात्र सहारा ग्रहण करता हुआ अपने को बुद्ध को अर्पित कर देता है। त्रयोदश सर्ग में बुद्ध ने नन्द को बौद्ध-धर्म की शिक्षाओं का उपदेश दिया है। महाकाव्य के अन्त में नन्द का मन सांसारिक विषमताओं एवम् आसक्तियों से मुक्ति प्राप्त करके शान्त प्रकृतिस्थ होकर समाधिस्थ होकर साधना करता है।

इस महाकाव्य की रचना का उद्देश्य केवल यही प्रतीत होता है कि सांसारिक विषयों में आसक्त प्राणि-समूह को विषय भोगों से हटाकर बौद्ध-धर्म के अनुकूल आचरण करने के लिये और मुक्ति लाभ की ओर प्रेरित करना है। वास्तव में अश्वघोष एक महादार्शनिक थे और उत्कृष्ट प्रतिभा सम्पन्न महाकवि थे। इसीलिये उन्होंने अपने महाकाव्यों में नीरस एवं जटिल दार्शनिक उपदेशों को आकर्षक कथाओं के साथ इस प्रकार निबद्ध किया है कि पाठक का मन सहज ही उनके कविता माधुर्य में अपने को भूलकर काव्यानन्द और दार्शनिक उच्च उपदेशों से एक साथ लाभान्वित होता है। अत: हम कह सकते हैं कि उनकी रचना शैली दार्शनिक वर्णनों से ओतप्रोत होने पर भी सरल और सहज बोधगम्य है। सौन्दरानन्द महाकाव्य की शैली रामायण पर आधारित प्रतीत होती है।

महाकवि ने बुद्ध और नन्द के चरित्र को प्रकाश में लाने के लिये काव्यमयी भाषा का सरल एवं सरस प्रयोग किया है। करुण रस के चित्रण में अश्वघोष बाल्मीकि और भवभूति से समानता रखते हुए प्रतीत होते हैं। जब नन्द गृह परित्याग करके बौद्ध भिक्षु हो जाता है तो उस समय नन्द की नवोढा पत्नी सुन्दरी का करुण विलाप, सिद्धार्थ के राजमार्ग पर प्रस्थान करने पर-स्त्रियों की बुद्ध के प्रति दर्शनोत्कण्ठा, सिद्धार्थ के रात्रि में घर छोड़कर चले जाने पर स्त्रियों का वीभत्स रूप, सिद्धार्थ के बन में चले जाने पर एकाकी छन्दक के लौटने पर नगरवासियों का करुण विलाप, इस प्रकार के वर्णनों को पढ़ने से भवभूति के "अपि ग्रावा रोदति दलति वज्रस्य कठिनम्" का सहज ही स्मरण हो जाता है और प्रत्येक पाठक की आंखों से आंसू निकल आते हैं। अतः निःसन्देह अश्वघोष दार्शनिक होते हुए भी महाकवि थे।

अश्वघोष कृत बुद्धचरितम्—

महाकवि अश्वघोष ने बुद्धचरित की रचना २८ सर्गों में की है। परन्तु आज संस्कृत में केवल १७ सर्ग ही उपलब्ध होते हैं। धर्मक्षेत्र नामक भारतीय विद्वान् ने बुद्धचरित के २८ सर्गों का अनुवाद प्रकाशित कराया है। चीनी यात्री इत्सिंग महोदय ने बुद्धचरित को बृहदाकार ग्रन्थ कहा है। इसमें बुद्ध भगवान् के जीवन सम्बन्धी विविध घटनाओं तथा उनके सिद्धान्तों का वर्णन काव्यमयी भाषा के माध्यम से किया गया है। बुद्धचरित की उत्कृष्टता एवं महत्ता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि इसका सम्मान केवल भारत में ही न होकर विदेशों में भी इसका अध्ययन बड़ी गौरवता के साथ किया गया और विदेशियों ने इसकी उपयोगिता एवं महत्ता की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की तथा अश्वघोष की काव्य प्रतिभा से प्रभावित होकर बुद्धचरित का विदेशों में विभिन्न भाषाओं में अनुवाद किया गया। बुद्धचरित का सबसे पहले १८८३ ई० में अंग्रेजी में अनुवाद हुआ। यह अनुवाद सैमुअल वील महोदय के कर कमलों से सम्पन्न हुआ। इसके बाद फ्रेडरिक नामक जर्मनी विद्वान् ने बुद्धचरित का अनुवाद जर्मनी भाषा में किया। इस महाकाव्य के नाम से ही यह प्रतीत होता

है कि इसमें तथागत बुद्ध भगवान् की जीवनी का वर्णन किया गया है। इक्ष्वाकुवंश में मर्यादा पुरुषोत्तम राम अवतरित हुए। राम के समान बुद्ध भी इस पवित्र भारत में महापुरुष के रूप में अवतरित होकर ख्याति प्राप्त की। राम और बुद्ध दोनों ही ऐतिहासिक महापुरुष हैं। राम ने प्रजा का पालन बड़ी आदर्शता, त्याग और वत्सलता के साथ किया। राम ने प्रजा में महान् आदर प्राप्त किया तो बुद्ध ने स्त्री, पुत्र, राज्य आदि सुखों को छोड़कर परमसत्य और परमविश्रान्ति के मार्ग का अवलम्बन ग्रहण करके अपने जीवन का सत्य और विश्रान्ति को ही लक्ष्य बनाया।

अश्वघोष ने इस महाकाव्य में बुद्ध के जीवन का सर्वांगीण चित्र प्रस्तुत किया है। आरम्भ में ५ सर्गों में बुद्ध के जन्म और वैराग्य के उत्पन्न तथा अर्धरात्रि में स्त्री, पुत्र आदि को छोड़कर बाहर निकल जाने की कथा का वर्णन किया है। छठे तथा सातवें सर्ग में बुद्ध ने तपोवन में प्रवेश किया। आठवें सर्ग में बुद्ध के गृह छोड़कर चले जाने का कारण यशोधरा के करुण विलाप का वर्णन किया है, नवम सर्ग में बुद्ध को खोजने के प्रयत्नों का वर्णन है। दशम सर्ग में बुद्धत्व प्राप्त करके बुद्ध के मगध जाने का वर्णन है। ११ से १३ सर्गों में सांसारिक विषय वासनाओं की तीव्र भर्त्सना का वर्णन किया गया है। चतुदर्श सर्ग में बुद्ध की पूर्ण बुद्धत्व प्राप्ति का वर्णन है। चौदहवें सर्ग के कुछ अंश से लेकर १७ सर्गों तक बुद्ध के द्वारा बौद्ध-धर्म का प्रचार और बौद्ध-धर्म की शिक्षायें, बुद्ध के उपदेश, बौद्ध संघों की स्थापना आदि का वर्णन किया गया है। साथ ही अशोक के समय तक की बौद्ध-धर्म की स्थिति का वर्णन किया गया है।

बुद्धचरित में २८ सर्ग थे, परन्तु इस समय २८ सर्ग पूर्णरूप से संस्कृत में प्राप्त नहीं होते हैं। आज जो बुद्धचरित प्राप्त होता है उसमें सतरह सर्ग हैं। इन सतरह सर्गों में १३-१४ सर्ग किसी अमृतानन्द नामक विद्वान् के द्वारा (१९०० ई०) में जोड़ दिये गये हैं। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने चौदहवें सर्ग के मध्य तक ही सम्पादित करके प्रकाशित कराया। प्रथम सर्ग भी पूर्ण नहीं है। इससे यह स्पष्ट होता है कि १३-१४ सर्गों तक ही इसकी प्रामाणिकता

सिद्ध होती है। बुद्धचरित का २८ सर्गों का हिन्दी संस्करण सूर्यनारायण चौधरी ने भी सम्पादित किया है, १४ सर्गों तक संस्कृत के २ लोकों को साथ में दिया गया है। शेष आगे केवल हिन्दी मात्र दी गई है। सूर्य नारायण चौधरी ने अपने हिन्दी संस्करण का आश्रय जान्स्टन महोदय के अंग्रेजी अनुवाद को बनाया है।

आज जो हम बुद्धचरित को देख रहे हैं और इसके काव्य सौष्ठव से लाभान्वित हो रहे हैं। इसका श्रेय चीनी और तिब्बती भाषा के अनुवादकों को है, जिन्होंने तिब्बती और चीनी भाषा में अनुवाद करके बुद्धचरित की रचना को जीवित रखा। धर्म रक्ष नामक बौद्ध भिक्षु ने ४१४-४२१ ई० के मध्य बुद्धचरित का चीनी अनुवाद किया था। उसके बाद ७०० या ८०० ई० में मूल संस्कृत से इसका तिब्बती भाषा में अनुवाद किया गया। ये दोनों अनुवाद आज उपलब्ध हो रहे हैं। इन दोनों अनुवादों में बुद्धचरित के २८ सर्ग प्राप्त होते हैं।

बुद्धचरित के विषय में इत्सिंग ने अपने विचार व्यक्त करते हुये ७०० ई० में लिखा है कि भारतवर्ष के सभी भागों में जावा, सुमात्रा और उनके समीपवर्ती द्वीपों में बुद्धचरित का पाठ तथा संगायन यथा समय हुआ करता था।

बुद्ध के जीवन पर विहङ्गम दृष्टि—

शाक्य वंश के राजा शुद्धोधन की राजधानी 'कपिलवस्तु' थी। एक बार महारानी "माया" देवी लुम्बिनी नामक वन में विहार करने गई थी। वहीं माया देवी ने इस सिद्धार्थ नामक पुत्र रत्न को जन्म दिया, कतिपय ब्राह्मणों ने बुद्ध के विषय में भविष्यवाणी की थी कि यह बालक बहुत बड़ा महात्मा होगा या सम्राट् बनेगा। तत्कालीन प्रख्यात असित नामक ऋषि ने बालक को देखते ही राजा शुद्धोदन से स्पष्ट शब्दों में कह दिया था कि यह बालक सम्राट् न होकर बहुत बड़ा प्रख्यात ज्ञानी ऋषि होगा। इसका जन्म लोक के उद्बोधन के लिये हुआ है। अतः इस बालक का नाम 'सिद्धार्थ' रखा गया। राजा शुद्धोदन ने

बाल्य काल से ही इस बालक को सांसारिक विलासिता आदि मिथ्या प्रलोभनों में डालने का अथक प्रयास किया। परन्तु बुद्ध को ये सांसारिक विषय वासना आदि सुख विषवत् प्रतीत हुये और उनका मन उक्त प्रलोभनों में सन्तुष्ट नहीं हुआ। राजा की ओर से ऐसा कठोर प्रबन्ध था कि जिससे बुद्ध इच्छा करते हुये भी राजमहल से बाहर नहीं जा सकते थे। राजमहल से निकलकर संसार की वास्तविकता को देखने की इच्छा बुद्ध के हृदय में अनेक बार उत्पन्न हुई, परन्तु उन्हें बाहर जाने की अनुमति नहीं प्राप्त हुई। एक बार जब शुद्धोदन ने पुत्र की बाहर जाने की बलवती इच्छा का अनुभव किया तो विशेष प्रबन्धके द्वारा बुद्ध को राजमहल से उपवन में जाने की अनुमति प्रदान की तब बुद्ध ने रथ पर बैठकर प्रस्थान किया। देवताओं ने बुद्ध के उद्बोधन का सही समय समझकर एक वृद्ध पुरुष को बनाकर उनके सामने प्रस्तुत कर दिया। जिस वृद्ध पुरुष को देखकर बुद्ध ने आश्चर्ययुक्त होकर सारथि से कहा कि यह कौन पुरुष है? क्योंकि बुद्ध ने इससे पहले वृद्ध पुरुष नहीं देखा था। उन्होंने सारथि से कहा कि—

क एष भोः सूतनरोऽभ्युपेतः केशैःसितैर्यष्टिविषक्तहस्तः।
भ्रूसंवृताक्षः शिथिलानताङ्गः किं विक्रियैषा प्रकृतिर्यदृच्छा॥

अर्थात् हे सारथि ! यह कौन पुरुष है' इसके बाल सफेद हैं, हाथों में लाठी भौंहों से इसकी आंखें ढकी हुई हैं और रोग से ग्रस्त है।

बुद्ध का हृदय कम्पित हो उठा कि एक दिन हमको भी ऐसा ही होना पड़ेगा। क्योंकि वृद्धावस्था तो किसी पक्षपात के बिना सभी प्राणिमात्र को प्रभावित करती है और सबके सौन्दर्य आदि गुणों को नष्ट कर डालती है। ऐसा विचार कर बुद्ध ने कहा कि—

एवं जरा हन्ति च निर्विशेषं, स्मृतिं च रूपं च पराक्रमं च।
न चैव संवेगमुपैति लोकः प्रत्यक्षतोऽपीदृशमीक्षमाणः॥

ऐसा कहकर बुद्ध वहीं से लौटकर राजमहल में आ गये और वृद्धावस्था के विषय में ही सोचते रहे। उसके बाद पुनः बुद्ध के हृदय में पुनः बाहर भ्रमण

करने की इच्छा उत्पन्न हुई और उसी प्रकार पुनः भ्रमणार्थ राजमहल से निकल पड़े। इस बार देवताओं ने बुद्ध के सामने एक रोगी बनाकर प्रस्तुत कर दिया जिसे देखकर सारथि से पूछा यह जीवन की कैसी विडम्बना है जिससे सुन्दर शरीर भी कुरूप और निर्बल निःसहाय हो जाता है। क्या यह स्थिति सभी देहधारियों की होती है ? सारथि से रोग की अनिवार्यता सुनकर पुनः वहीं से राजमहल लौट आये। कुछ दिनों के बाद पुनः तीसरी बार भ्रमण के लिए प्रस्थान किया। इस बार देवताओं ने एक मृतक पुरुष बनाकर बुद्ध के सामने प्रस्तुत कर दिया जिसे देखकर जीवन की नश्वरता समझकर पुनः तीसरी बार भी वहीं से राजमहल को लौट आये, फिर उद्विग्न रहते हुये एक दिन पुनः चौथी बार भ्रमणार्थ प्रस्थान किया। इस बार देवताओं ने एक संन्यासी बनाकर बुद्ध के सामने उपस्थित कर दिया जिसे देखकर बुद्ध को संसार की उपयोगिता और जीवन सही लक्ष्य क्या है समझ में आ गया। फिर उन्होंने लौटकर राजा शुद्धोदन अर्थात् अपने पिता से संन्यास ग्रहण की आज्ञा मांगी परन्तु अनुमति प्राप्त नहीं हुई। तब बुद्ध ने अपने इस जीवन को वन्दी जीवन समझकर एक दिन रात में स्त्री पुत्र एवं राज्य को सदा के लिये परित्याग कर छन्दक के साथ घोड़े पर सवार होकर निकल गये और निकलते समय यह कहा कि—

"जननमरणयोरदृष्टपारो न पुनरहं कपिलाह्वयं प्रवेष्टा"

अर्थात् मैं जन्म और मृत्यु के पार को (रहस्य को) बिना देखे हुये कपिलवस्तु नामक नगर में पुनः प्रवेश नहीं करूंगा।

कपिलवस्तु से दूर पहुंचने पर छन्दक और घोड़े को भी त्याग दिया और तपोवन में प्रवेश करके ऋषियों के समीप रहते हुए जन्म और मृत्यु के रहस्य को जानने का प्रयत्न करने लगे। जब ऋषियोंसे उनको सन्तोष नहीं हुआ तो एक मुनि के आदेशानुसार विन्ध्यवासी अराज नामक मुनि के पास मोक्ष धर्म की शिक्षा प्राप्त करने के लिये तपोवन से विन्ध्य के लिये प्रस्थान किया। मार्ग में जाते हुए बुद्ध को बिम्बसार ने अपना आधा राज्य देकर गृहस्थ आश्रम में लौटने की अभ्यर्थना की परन्तु बुद्ध ने अस्वीकार कर दिया और अराज मुनि के पास

प्रस्थान किया। परन्तु वहां भी उनको तृप्ति और सन्तोष नहीं हुआ। उसके बाद वे गया में गये। वहां उन्होंने तप करना आरम्भ किया परन्तु तप से भी कोई लाभ नहीं हुआ, तब उन्होंने तप करना छोड़कर समाधि लगा ली। समाधि के द्वारा ही उन्हें अभीष्ट सिद्धि प्राप्त हुई। यहीं गयाश्रम में ही ज्ञान उद्बुद्ध हुआ और बुद्धत्व प्राप्त किया। इसके बाद जन-साधारण तक जन्म मृत्यु की विषमताका ज्ञान पहुंचाने का प्रयास किया और उपदेश के द्वारा बौद्ध धर्म का प्रचार तथा संघ निर्माण आदि का कार्य प्रारम्भ किया।

महाकाव्य की दृष्टि से बुद्धचरितम्—

संस्कृत साहित्य का सर्व प्रथम एवम् आदि महाकाव्य बाल्मीकि-कृत 'बाल्मीकीय रामायण' माना जाता है। वस्तुतः बाल्मीकीय रामायण संस्कृत साहित्य का आदि महाकाव्य है जिसकी तुलना अन्य कोई महाकाव्य नहीं कर सकते क्योंकि रामायण, काव्य कला और काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से बेजोड़ है।

वाल्मीकि के पश्चात् संस्कृत साहित्य में सर्वप्रथम महाकवि अश्वघोष के दो महाकाव्य आते हैं' जिनके नाम (१) बुद्ध चरितम् और सौन्दरानन्द हैं। महाकवि अश्वघोष के इन दोनों महाकाव्यों पर चिन्तन करने पर यह अवश्य प्रतीत हो जाता है कि अश्वघोष के समय तक महाकाव्यों की परम्परा अवश्य विद्यमान होगी नहीं तो सहसा ऐसे उत्कृष्ट महाकाव्यों की रचना सम्भव नहीं हो सकती थी। महाकवि अश्वघोष कालिदास से पूर्ववर्ती होंगे। अश्वघोष ने तत्कालीन काव्य परम्परा का अवलोकन करके ही अपने उत्कृष्ट काव्यों की रचना की होगी। परन्तु वह काव्य परम्परा कालगति के कारण आज उपलब्ध नहीं हो रही है। अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि बुद्धचरित को महाकाव्य ही क्यों मानें ? अर्थात् महाकाव्य किसे कहते हैं जिसके आधार पर बुद्धचरित के महाकाव्यत्व की परीक्षा कर सकें तो अब महाकाव्य के सम्बन्ध में भी यहां कुछ विवेचन करना आवश्यक हो गया है जो निम्न प्रकार देखिये।

काव्य के विषय में विभिन्न मत—

बुद्धचरित को महाकाव्य कहने के पहले काव्य का स्वरूप भी समझ लेना आवश्यक है । प्राचीन और नवीन आचार्य परम्परा के अनुसार काव्य तथा महाकाव्य किसे कहते हैं अर्थात् काव्य और महाकाव्य की क्या परिभाषायें हैं ? इस सम्बन्ध में संक्षिप्त विवेचन विभिन्न आचार्यों के मतों को प्रदर्शित करते हुये किया जा रहा है—

सर्व प्रथम काव्य का लक्षण अग्निपुराण में निर्दिष्ट किया गया है जिसके अनुसार अभिधा की प्रधानता स्वीकार करते हुये काव्य का निम्नलिखित काव्य-लक्षण देखा जा सकता है—

> शास्त्रे शब्दप्रधानत्वमितिहासेषु निष्ठता ।
> अभिधायाः प्रधानत्वात् काव्यं ताभ्यां विभिद्यते ॥

अर्थात् शब्दार्थादि अलंकारों एवम् ओज, प्रसाद, माधुर्य, आदि गुणों के सद्भाव से युक्त और दोषों से रहित शब्दों को काव्य कहा जाता है ।

अग्नि पुराण के पश्चात् "भामह" ने काव्य के लक्षण का स्वरूप प्रकाशित करने के उद्देश्य से लिखा है कि "शब्दार्थौ काव्यम्" अर्थात् शब्द और अर्थ को काव्य कहते हैं । 'भामह' ने शब्द और अर्थ की आवश्यकता पर बल दिया है । परन्तु यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि ये शब्द और अर्थ कैसे होने चाहियें जिनको हम काव्य कहते हैं । इस विषयमें आलंकारिक विद्वानों में बड़ा मतभेद प्राप्त होता है ।

भामह के अनन्तर दण्डी ने काव्य की परिभाषा में पदावली को विशेष गौरव उदान करते हुये उन्होंने काव्य की परिभाषा निम्न प्रकार दी है ।

> संक्षेपाद् वाक्यमिष्टार्थं व्यवच्छिन्ना पदावली ।
> काव्यं स्फुटदलंकारं गुणावद्दोषवर्जितम् ॥

अर्थात् दोष रहित, गुणयुक्त, अलंकारों से युक्त, अभीष्ट अर्थ देने वाली पदावली को काव्य कहते हैं । इसमें शब्द और अर्थ की पृथकता का निर्देश नहीं किया गया है ।

आचार्य रूद्रट ने दण्डी के काव्य लक्षण में कुछ इधर उधर परिवर्तन करके काव्य का लक्षण इस प्रकार किया है कि ।

शरीरं तावदिष्टार्थ—व्यवच्छिन्ना पदावली ।
ननु शब्दार्थों तावत्काव्यम् ।।

काव्य की आत्मा क्या है ? इस प्रश्न का समाधान करने के उद्देश्य से आचार्य वामन ने काव्य की आत्मा रीति को माना है । इसी अभिप्राय से वामन ने काव्य का लक्षण "रीतिरात्माकाव्यस्य' लिखा है । वामन के पश्चात् कुन्तक ने काव्य की आत्मा का विवेचन करते हुये वक्रोक्ति को काव्य की आत्मा माना है. उन्होंने लिखा है कि :—

"वक्रोक्तिः काव्यजीवितम्"

इसके बाद आनन्दवर्धन ने काव्य की आत्मा ध्वनि को मानते हुए लिखा है कि "ध्वनिरात्मा काव्यस्य" आनन्दवर्धन ने पूर्ववर्ती समस्त काव्य की आत्मा सम्बन्धी मान्यताओं का अपनी ध्वनि में अन्तर्भाव करने के उद्देश्य से ध्वनि के तीन भेदों का निरूपण किया । वे तीन भेद इस प्रकार हैं—(१) रस-ध्वनि, (२) अलंकार ध्वनि और (३) वस्तु-ध्वनि ।

इसके बाद तो काव्य की आत्मा सम्बन्धी विवेचना का एक प्रवाह चल पड़ा । इन सभी मतों का समन्वय स्थापित करने वाले आचार्य मम्मट ने काव्य का स्वरूप निर्धारित करते हुए लिखा है कि—

"तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि"

अर्थात् दोषरहित, गुण सहित और अलंकारयुक्त शब्द और अर्थ को काव्य कहते हैं । काव्य की आत्मा के विषय में आचार्य मम्मट "रस" को ही काव्य की आत्मा मानते हैं । आचार्य मम्मट के बाद साहित्य दर्पणकार विश्वनाथ ने मम्मट के काव्य लक्षण को खण्डन करने का प्रयास किया और "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्" काव्य का लक्षण लिखा । परन्तु विश्वनाथ का यह काव्य लक्षण समीचीन एवम् उचित प्रतीत नहीं हुआ ।

विश्वनाथ के पश्चात् पण्डितराज जगन्नाथ ने काव्य लक्षणों की भरमार और उनकी न्यूनताओं को देखकर अपने एक नवीन काव्य लक्षण का निर्माण किया। जो इस प्रकार है—

"रमणीयार्थ-प्रतिपादक: शब्द: काव्यम्"

अर्थात् रमणीय अर्थ को प्रतिपादित करने वाले शब्द को काव्य कहते हैं। पण्डितराज ने विशेष रूप से मम्मट और विश्वनाथ के काव्य लक्षणों का खण्डन करने के लिये ही अपने काव्य का लक्षण बनाया और शब्द को ही काव्य का शरीर माना।

उपर्युक्त काव्यशास्त्रियों के अतिरिक्त काव्य के लक्षणकर्त्ताओं में भोज, हेमचन्द्र, विद्यानाथ आदि के नामों का उल्लेख किया जाता है। भोज ने काव्य की परिभाषा निम्न प्रकार लिखी है—

"निर्दोषं गुणवत्काव्यमलंकारैरलंकृतम्"

हेमचन्द्र ने काव्य का लक्षण इस प्रकार लिखा है कि—

"अदोषौ सगुणौ सालङ्कारौ वा शब्दार्थौ काव्यम्"

विद्यानाथ ने प्राचीन परम्परा का अनुकरण करते हुए काव्य की परिभाषा निम्न प्रकार दी है—

"गुणालङ्कारसहितौ शब्दार्थौ दोषवर्जितौ काव्यम्"

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि जिस किसी आचार्य ने चाहा उसने अपनी बुद्धि से जिस काव्य तत्व को मुख्य समझा उसको ही काव्य की आत्मा मान लिया और काव्य की परिभाषा लिख दी। आनन्दवर्धन के बाद समन्वयवादी दृष्टिकोण लिये हुए आचार्य मम्मट ने काव्य लक्षणों की विविधता और जटिलता को गम्भीरता से समझ कर एक समन्वित एवं नवीन वैज्ञानिक काव्य लक्षण का निर्माण किया। यही कारण है कि मम्मट के काव्य लक्षण को आज सर्वाधिक मान्यता प्रदान की जाती है और उसी का समादर किया जाता है। वस्तुत: मम्मट ने ही काव्य के तत्वों को यथेष्ट स्थान प्रदान

किया अर्थात् रस, भाव, औचित्य, ध्वनि, शब्दशक्ति, गुण, अलंकार, दो
रीति आदि का यथायोग्य विवेचन करके उचित स्थान देकर काव्य का गौ
बढ़ाया ।

काव्य लक्षण निर्धारित हो जाने के बाद आगे चलकर काव्य के तीन
होते हैं वे निम्न प्रकार देखिये—

(१) गद्य-काव्य, (२) पद्य-काव्य और (३) चम्पू-काव्य ।

इन भेदों में पद्य काव्य के भी अनेक भेद हो गये हैं जिनमें महाकाव्य अ
खण्डकाव्य ये दो भेद मुख्य हैं। प्रस्तुत विवेच्य बुद्धचरित नामक का
महाकाव्य की श्रेणी में गिना जाता है। अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है
महाकाव्य किसे कहते हैं ? इस प्रश्न के समाधानार्थ विभिन्न आचार्यों के म
का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जाता है।

महाकाव्य-लक्षणम्—

महाकाव्य का लक्षण करने वालों में सर्वप्रथम आचार्य भामह का न
लिया जाता है। भामह ने बन्ध की दृष्टि से काव्य के पांच भेदों का वर
किया है। वे महाकाव्य को सर्गबद्ध मानते हैं और महाकाव्य की रच
महापुरुषों के जीवन वृत्त आदि के विषय में लिखे जाते हैं और आकार भी ब
ही होता है। महाकाव्य में दोष रहित गुण और अलंकारयुक्त शब्दों औ
अर्थों का प्रयोग किया जाता है। महाकाव्य में ऐतिहासिकता की मुख्य योज
अपेक्षित होती है। इसमें मन्त्र, दूत, प्रयाण, युद्ध, नायक इन पांच सन्धियों
वर्णन होना अनिवार्य होता है। इनको लक्ष्य करके महाकाव्य की रचना कर
चाहिये।

सर्वप्रथम महाकाव्य के प्रारम्भ में आशीर्वादात्मक या नमस्कारात्मक अथ
वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण निबद्ध होना चाहिये। कहीं पर खल निन्दा
कहीं पर सज्जन प्रशंसा का वर्णन होना चाहिये। सर्ग न तो बहुत छोटे औ
न [illegible] होने चाहियें। सर्गों की संख्या कम से कम आठ होनी चाहिये
प्रत्येक सर्ग की रचना एक ही छन्द में होनी चाहिये परन्तु सर्ग के अन्त
में छन्द परिवर्तन अवश्य कर देना चाहिये तथा सर्ग के अन्त में आगे आने वाले

कथा की सूचना पाठकों को प्राप्त हो जानी चाहिये। सन्ध्या, सूर्योदय, चन्द्रोदय, रात्रि, प्रदोष, दिन, मृगया, पर्वत, वन, उपवन, ऋतु, समुद्र, सयोग, वियोग, स्वर्ग, नरक, यज्ञ, युद्ध, यात्रा, विवाद, मन्त्रणा, पुत्र जन्म, नायक के उत्थान आदि का वर्णन यथास्थान यथासमय होना चाहिये। महाकाव्य का नामकरण कवि के नाम पर या चरित्र के नाम पर या चरित्रवान् नायक के नाम पर होना चाहिये।

इस प्रकार महाकाव्य की परिभाषा के सम्बन्ध में अनेक आचार्यों ने अपना मत व्यक्त किया है, जिन सबका आशय निम्न प्रकार है—

(१) महाकाव्य की रचना सर्गबद्ध होनी चाहिये और उसमें प्रबन्ध-काव्य के समस्त गुण तथा अर्थ सन्धियों का समुचित वर्णन होना चाहिये।

(२) इसका नायक धीरोदात्त प्रकृति वाला, क्षत्रिय अथवा देवता होना चाहिये।

(३) महाकाव्य की रचना आठ सर्गों से अधिक और अनेक छन्दों में होनी चाहिये।

(४) महाकाव्य की कथा ऐतिहासिक होनी चाहिये।

(५) शृंगार, वीर तथा शान्त रसों में से कोई एक रस मुख्य होना चाहिये। अन्य रस सहायक रूप में निबद्ध होने चाहियें।

(६) प्रकृति वर्णन के रूप में नगर, सागर, पर्वत, सन्ध्या, प्रातःकाल आदि का वर्णन होना चाहिये।

महाकाव्य में अतिशयोक्ति नहीं होनी चाहिये। सम्पन्नता का वर्णन आवश्यक होता है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का वर्णन ही इसका परम लक्ष्य होना चाहिये। प्रायः सभी रसों का समावेश होना चाहिये। इसके प्रारम्भ में ही नायक की वंशावली आदि का संक्षिप्त परिचय पाठकों को करा देना अपेक्षित होता है। नायक के उत्कर्ष का वर्णन होना चाहिये और खल नायक के उत्कर्ष शौर्य आदि का वर्णन नहीं होना चाहिये। प्रतिनायक की पराजय

अथवा वध दिखाना आवश्यक होता है। नायक के उदात्त चरित्र, वीरता, कला, नैपुण्य आदि का व्यापक वर्णन होना चाहिये।

आचार्य दण्डी के मतानुसार महाकाव्य की कथा काल्पनिक न होकर इतिहास प्रसिद्ध होनी चाहिये। महाकाव्य का नायक धीरोदात्त प्रकृति का होना चाहिये। इसमें नगर, समुद्र, पर्वत, नदी, ऋतु वर्णन सूर्योदय, चन्द्रोदय आदि प्रकृति वर्णन, जलविहार, उपवन, विवाह, राजतिलक, यात्रा, युद्ध वर्णन एवम् दिग्विजय आदि का वर्णन यथास्थान और यथासमय होना चाहिये तथा श्रृंगार या वीर रस प्रधान होना चाहिये। काव्य का विभाजन सर्गों में होना चाहिये। सर्ग में एक ही छन्द के माध्यम से रचना होनी चाहिये, परन्तु सर्ग के अन्त में छन्द परिवर्तन कर देना चाहिये। महकाव्य के प्रारम्भ में मंगलाचरण अपेक्षित होता है और वह आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक अथवा वस्तुनिर्देशात्मक होना चाहिये।

साहित्य दर्पणकार विश्वनाथ के मत से महाकाव्य की रचना सर्गों में निबद्ध होनी चाहिये। महाकाव्य का नायक देवता अथवा उच्च कुलोत्पन्न क्षत्रिय होना चाहिये। कहीं कहीं उत्तम वंश के कुलीन अनेक राजा नायक हो सकते हैं। श्रृंगार अथवा वीर या शान्त रस मुख्य रस होना चाहिये। नाटक की सभी सन्धियाँ महाकाव्य में अपेक्षित होती हैं। महाकाव्य की कथा ऐतिहासिक होनी चाहिये या लोक प्रसिद्ध महापुरुष से सम्बन्धित होनी चाहिये। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में से किसी एक की सिद्धि लक्ष्य होना चाहिये।

उपर्युक्त महाकाव्य की परिभाषा बुद्धचरित पर पूर्ण रूपेण घटित हो रही है। सर्वप्रथम बुद्धचरित की रचना सर्गबद्ध है और उसके सर्गों की संख्या ८ सर्गों से अधिक है। यद्यपि बुद्धचरित के सर्गों के विषय में विद्वानों में बड़ा मतभेद प्राप्त होता है। बुद्धचरित को १३–१४ सर्गों तक ही प्रमाणित माना जाता है। इसमें १७ सर्ग प्राप्त होते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि ३–४ सर्गों को १९ वीं शताब्दी में जोड़ दिया गया है। रस परिपाक की दृष्टि से भी बुद्धचरित की रचना सफल एवं महाकाव्य के लक्षण के अनुरूप है। इसमें अनेक रसों का वर्णन किया गया है, तथापि मुख्य रस श्रृंगार, करुण और

शान्त रस हैं। बुद्धचरित के द्वितीय, चतुर्थ और पंचम सर्गों में शृंगार रस का सफल परिपाक दर्शनीय है।

उपर्युक्त निर्दिष्ट महाकाव्य के समस्त लक्षणों का बुद्धचरित में सफल निर्वाह दृष्टिगोचर होता है। अतः महाकाव्यत्व की दृष्टि से यह अश्वघोष का उत्कृष्ट महाकाव्य है।

अश्वघोष की दार्शनिकता—

अश्वघोष के जीवन वृत्त से विदित होता है कि वे सार्वभौमिक विद्वान् और अप्रतिम प्रतिभा सम्पन्न विविध शास्त्रों के ज्ञाता थे। सर्वप्रथम अश्वघोष दार्शनिक थे और फिर बाद में महाकवि थे। यही कारण है कि दर्शन सम्बन्धी ग्रन्थों के अतिरिक्त उनके काव्य नाटक आदि में भी दार्शनिक शैली का व्यापक प्रभाव परिलक्षित होता है। अतः जब तक अश्वघोष की दार्शनिकता और उनके द्वारा स्वीकृत बौद्ध-धर्म की गम्भीरता न समझ लें तब तक उनके काव्यों का वास्तविक आनन्द नहीं प्राप्त हो सकता है। इसलिये यह कहना सर्वथा ठीक ही है कि अश्वघोष के कवित्व को उनकी दार्शनिक मान्यता से पृथक् करके काव्य का आस्वाद प्राप्त करना सम्भव नहीं है।

यद्यपि अश्वघोष के काव्यों में यत्र तत्र वैदिक परिज्ञान सम्बन्धी और उपनिषद् सम्बन्धी परिज्ञान के संकेत प्राप्त होते हैं तथा साथ ही सांख्य दर्शन के भी संकेत प्राप्त होते हैं तथापि अश्वघोष का स्पष्ट दार्शनिक चित्र बौद्ध दर्शन से अधिक प्रभावित प्रतीत होता है। अश्वघोष के दार्शनिक मत को समझने के लिये बौद्ध दर्शन के मुख्य सिद्धान्तों का परिज्ञान प्राप्त कर लेना आवश्यक है।

बौद्ध-धर्म के प्रमुख सिद्धान्त और शिक्षायें—

बुद्ध भगवान् ने सदाचरण का उपदेश देना ही अपना कर्तव्य समझा। आध्यात्मिक तत्वों की समीक्षा न तो स्वयं बुद्ध ने ही दी और न उसके लिये शिष्य मण्डली को ही आदेश दिया, फिर भी बुद्ध के उपदेशों में जो दार्शनिक सिद्धान्त अन्तर्हित हैं, उनके कारण ही आज हजारों वर्षों के व्यतीत होने पर

भी बौद्ध-धर्म का समाज पर अक्षुण्ण प्रभाव बना हुआ है। बौद्ध-दर्शन का कारण वाद और आर्य-सत्य चतुष्टय बौद्ध-धर्म के मूलाधार माने जाते हैं। अतः बौद्ध दर्शन में कर्म की दृष्टि से आर्य चतुष्टय और तत्व विवेचन की दृष्टि से कारणवाद प्रमुख माना जाता है। कर्मक्षेत्र में बुद्ध ने कर्म की दृष्टि से चार सत्यों को गौरव प्रदान किया है। इन्हीं सत्यों के द्वारा और ज्ञान के कारण बुद्ध को बुद्धत्व प्राप्त हुआ। इन सत्यों को आर्य सत्य के नाम से अभिहित किया गया है। सत्यों की संख्या सीमित नहीं है तथापि सत्यों की मुख्य संख्या चार मानी गई है जो आर्य सत्य निम्न हैं—

(१) दुःख—संसार के समस्त प्राणियों का जीवन दुःखमय है।

(२) समुदाय—इस दुःख का कारण उपस्थित है।

(३) निरोध—दुःख के निरोध से ही वास्तविक मोक्ष प्राप्त होता है।

(४) निरोधगामिनी प्रतिपदा— दुःखों के विनाश के लिये सही वह यह मार्ग है जिसका आश्रय ग्रहण कर समस्त प्राणिमात्र को सदा के लिये दुःखों से निवृत्ति प्राप्त हो सकती है।

दुःख—संसार में दुःख व्यापक रूप में सर्वत्र विद्यमान है। दुःख की मीमांसा करते हुए तथागत बुद्धदेव ने कहा है कि—

"इदं एवो पन भिक्खवे दुक्खं अरिय जाति पि दुक्खा जस पि दुक्खा मरणाम्पि दुक्खं, सोकपरि देव दोमनस्सु पायासापि अप्पि येहि, सम्पयोगो दुक्खो, पियेहि विप्प भोगो दुक्खो यम्पिच्छं न लभति लम्पि दुक्खं, संखित्तेन पंचूपादानक्खन्धापि दुक्खा"

तात्पर्य यह है कि संसार के प्रत्येक कार्य और प्रत्येक वस्तु तथा घटनाओं में दुःख की सत्ता विद्यमान है। जिस वस्तु तथा व्यक्ति का मिलना सुख देने वाला है उसका वियोग दुःखदायी है। जिस वस्तु की प्राप्ति के लिये मनुष्य अथक परिश्रम करता है उस वस्तु की प्राप्ति भी दुःख का कारण है। प्रत्येक वस्तु के अर्जन में दुःख है, उसकी रक्षा में दुःख है। उसके विनाश में दुःख है, तो फिर उसको सुख देने वाला कैसे कह सकते हैं? धम्मपद में संसार को

अग्नि से प्रदीप्त घर के समान कहा गया है। तब फिर संसार में प्रसन्नता कैसी ? और कैसा आनन्द ? अतः संसार केवल दुःख ही दुख है।

इस प्रकार इस संसार को प्रथम सत्य तो दुःख ही है। साधारण मनुष्य लोग इस दुःख को सत्यता का अनुभव ही नहीं कर पाते हैं परन्तु ज्ञानी लोग दुःख की सत्यता को भली-भांति समझते और जानते हैं। बौद्ध दर्शन के अतिरिक्त अन्य दार्शनिक विद्वानों ने भी इस संसार को दुःखमय माना है। योग सूत्र में कहा है कि—

(१) दुःखमेव सर्वं विवेकिनः—

अर्थात् सभी दार्शनिकों ने संसार को दुःख रूप ही माना है। उसी प्रकार बुद्धदेव ने भी संसार को दुःख रूप कहा है, यही प्रथम ,,आर्य सत्य है"।

(२) दुःख समुदाय—

यह दुःख समुदाय नामक द्वितीय आर्य सत्य है। समुदाय शब्द का कारण है। इस वाक्य का पूरा अर्थ ही दुःख का कारण है। जब दुःख है तो उसका नाश भी अवश्य है। क्योंकि कार्य कारण का सिद्धान्त निश्चित है। दुःख का कारण तृष्णा है। जैसा बुद्ध भगवान् के शब्दों में देखा जा सकता है—

"इदं रवो पन भिक्खवे दुःख समुदयं अरिय सच्च योयम् तण्हा पोनब्भविका नन्दिराग सहगता तत्र तत्रभि नन्दिनी सेयमीदं कामतण्हा भवतण्हा विभवा-तण्हा"।

अर्थात् बुद्ध भगवान् ने तृष्णा को ही दुःख का कारण कहा है। तृष्णा संसार का सबसे बड़ा बन्धन है। संसार और संसार के समस्त प्राणी बंधे हुये प्रतीत होते हैं। धम्मपद में कहा गया है कि जिस प्रकार मकड़ी स्वयं जाल बुनती है और उसमें स्वयं बंधती है। उसी प्रकार संसार के प्राणी स्वयं तृष्णा रूपी जाल बुनते हैं और स्वयं उस तृष्णा के जाल में बंधते हैं। इस तृष्णा के तीन भेद होते हैं, जो निम्न प्रकार देखे जा सकते हैं।

(अ) कामतृष्णा—इस कामतृष्णा के अनेक प्रकार के विषयों को प्राप्त करने की इच्छा उत्पन्न होती है।

(ब) भवतृष्णा—यह तृष्णा ही संसार की सत्ता की रक्षा करती है। प्राणियों की तृष्णा ही संसार का कारण होती है।

(स) विभव तृष्णा–संसार का विनाश। संसार के नाश की इच्छा भी दुःख का कारण बन जाती है। जो व्यक्ति संसार को नश्वर समझते हैं, वे लोग ऋण लेकर भी घी पीना पसन्द करते हैं। उनके जीवन का एक मात्र लक्ष्य जीवन को सुखी बनाना होता है। उन लोगों का कथन है कि—

यावज्जीवेत्सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृत पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥

इस प्रकार यह तृष्णा ही ससार में विद्रोह भावना को जन्म देती है। संसार के समस्त उद्वेगजनक कार्यों की जनयित्री तृष्णा ही है। सभी लोग तृष्णा की शान्ति के लिये ही सतत प्रयास करते हैं। और तत् तत् वस्तुओं का संग्रह करके भी सन्तुष्ट नहीं होते हैं।

अतः तृष्णा ही दुःख का कारण है। अतः तृष्णा का विनाश करना संसार में उत्पन्न हुये समस्त प्राणियों का कर्तव्य है। यही द्वितीय आर्य सत्य है।

(३) दुःख निरोध—

तृतीय आर्य सत्य दुःखों का निरोध अर्थात् विनाश है। इससे यह प्रतीत होता है कि बुद्ध भगवान् ने दुःख की व्यापकता का अनुभव करके भयभीत नहीं हुये और दुःख के विनाश का कारण खोज निकाला और अपने शिष्यों को दुःख की व्यापक सत्ता का परिज्ञान कराया और साथ ही उसके विनाश के लिये उपदेश दिया। बुद्ध ने दुःख की व्याख्या करते हुये भिक्षुओं को उपदेश दिया कि—

इदं रवो पन भिक्खवे दुक्ख निरोधं अरिय सच्चं।
सो तस्सायेव तण्हाय असेस विराग निरोधो।
चागोपरि निस्सागो मुक्ति अनालयो।

तृष्णा का विनाश ही निर्वाण है अर्थात् तृष्णा के नाश होने पर इसी जीवन मे जीवित दशा मे उस स्थिति को प्राप्त हो जाता है, जिसको निर्वाण कहा गया है। अतः तृष्णा का विनाश कर डालना अथवा तृष्णा पर विजय प्राप्त कर लेना ही निर्वाण प्राप्त हो जाता है।

(४) दुःख निरोधगामिनी प्रतिपाद—

यहां प्रतिपद शब्द का अर्थ "मार्ग" है। इसी को चतुर्थ आर्य सत्य कहते हैं। यही दुःख के विनाश तक पहुंचाने वाला मार्ग है। इसको ही अष्टांगिक मार्ग कहते हैं।

आर्याष्टांगिक मार्ग—इस मार्ग के आठ अंग होते हैं। इन आठ मार्ग के तीन मार्गों का सम्बन्ध सदाचरण (शील) से है और तीन का सम्बन्ध चित्त अर्थात् मानसिक क्रिया की विकसित भावना से है। शेष दो मार्गों का सम्बन्ध प्रज्ञा अर्थात् बौद्धिक ज्ञान से है, जिनका विवरण संक्षेप में इस प्रकार है—

शील—के भी तीन भेद होते हैं—(१) सम्यक् वचन, (२) सम्यक् कर्म, (३) सम्यक् आजीव।

(१) **सम्यक् वचन**—झूठ, द्वेषयुक्त, कटु वाक्य और व्यर्थ निष्प्रयोजन न बोलना ही सम्यक् कहा है अर्थात् यथार्थ और सत्य तथा हितकारी वाक्य कहना।

(२) **सम्यक् कर्म**—हिंसा, परनिन्दा, चोरी और व्यभिचार आदि कर्मों का परित्याग करके अहिंसात्मक, लोकोपकारक परमार्थ प्राप्त कराने वाले कर्मों को करना।

(३) **सम्यक् आजीव**—सदाचरणपूर्वक उचित उपायों से जीविकोपार्जन करना।

चित्त के तीन अवान्तर कर्म—

(१) **सम्यक् व्यायाम**—असत् विचारों को छोड़कर श्रेष्ठ एवं सद् विचारों के द्वारा परिश्रम से लोक और आत्मकल्याण का अभ्यास करना।

(२) **सम्यक्-स्मृति**—सम्यक् चिन्तन और मनन के द्वारा मानसिक दुर्बलताओं एवं मानसिक विकारों पर दृष्टि रखते हुए वासनाओं को वश में करके उन पर विजय प्राप्त करना।

(३) **सम्यक् समाधि**—ध्यान के द्वारा चित्त को एकाग्र करने का निरन्तर अभ्यास एवं प्रयत्न करना।

प्रज्ञा के दो भेद—

(१) **सम्यक् दृष्टि**—तथागत बुद्ध के द्वारा निर्दिष्ट चार आर्य सत्यों पर दृढ़ विश्वास रखते हुए आत्म जीवन और संसार के प्रति उच्च विचारों का अर्जित करना।

(२) **सम्यक् संकल्प**—करणीय कार्यों के करने का प्रयत्न करना और न करने योग्य (अकरणीय) कार्यों का परित्याग करने का दृढ़ संकल्प करना।

यह अष्टांगिक मार्ग ही बौद्ध-धर्म की शिक्षा का आधार है। इस अष्टांगिक मार्ग पर चलने से सभी प्रकार के दुःखों की निवृत्ति हो जाती है, जैसा कि भगवान् बुद्ध ने कहा है—

एसो व मग्गो नत्थो ञ्जो दस्सनस्स विसुद्धिया।
एतं हि तुम्हें पटि पज्जथ मारस्सेतं पमोहनम्॥

बुद्ध भगवान् के द्वारा निर्दिष्ट (१) प्रज्ञा, (२) शील और (३) समाधि। ये तीन मुख्य साधन हैं। इन तीनों का अष्टांगिक मार्ग में अन्तर्भाव हो जाता है। मध्यम प्रतिपदा का स्वरूप स्पष्ट करते हुए बुद्ध ने इस प्रकार कहा है कि—

"द्वे भिक्खवे अन्ता पव्बज्जितेन न सेवितव्बा कतमे द्वे यो चायं कामेसु काम सुखल्लिका नु योगो हीनो गम्भो पोथुज्जनिको अनरियो अनत्थ सहितो। यो चायं अत्तकिलमथानुयोगो दुक्खो अनरियो अनत्थ संहितो। एते खो भिक्खवे उभे अन्ते अनुगम्म मज्झिमा पटिपदा तथागतेन अभिसबुद्धा चक्खु करणी आणकरणी उपसमाय अभिञ्ञाय सम्बोधाय निब्बाणं संवत्तति"

इस प्रकार बुद्ध ने यह रहस्य एवं जीवन का सार प्रकाशित किया है।

इस रहस्य के सम्यक् परिज्ञान से दुःखों की निवृत्ति हो जाती है। संसार दुःखों का भण्डार है और दुःख का कारण तृष्णा है। तृष्णा का विनाश ही दुःखों का विनाश है। तृष्णा की उत्पत्ति अज्ञान से होती हैं। यह अज्ञान ही संसार के समस्त दुःखों का मूल है। इस अज्ञान (अविद्या) को ज्ञान (विद्या) के द्वारा नष्ट करना चाहिये। परन्तु यह ध्यान रहे कि यह ज्ञान केवल उपदेश देने और सुनने से नहीं होता है। ज्ञान प्राप्ति के सदाचरण मार्ग का अवलम्बन ग्रहण करना अपेक्षित होता है। असत् कर्मों का परित्याग करके सत् मार्ग पर चलना ही ज्ञान कहा जाता है। जो ज्ञानी पुरुष सदाचरण का अनुसरण नहीं करता है, वह निरन्तर प्रयत्न करते हुये भी ज्ञान को नहीं प्राप्त कर पाता है अपितु अविद्या (अज्ञान) को प्राप्त होता है। अतः अज्ञान नाश और ज्ञान की प्राप्ति के लिए सदाचरण करना अनिवार्य है।

यही भारतीय उपनिषदों और दर्शन शास्त्रों का सार है। वेदान्त में अविज्ञा (अज्ञान) को ही संसार का कारण प्रतिपादित किया गया है। विद्या अर्थात् ज्ञान से अविद्या (अज्ञान) नष्ट हो जाती है, और फिर ज्ञान प्राप्ति के होने पर मुक्ति प्राप्त होती है। उपनिषद् और वेदान्त, आदि दर्शन शास्त्र अज्ञान को ही दुःख का कारण मानते हैं। इसीलिये कहा भी है कि "ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः"।

उपर्युक्त चार आर्य सत्य, तथा कारण कार्य सिद्धान्त ही बौद्ध दर्शन की आधार शिला है। इस बौद्धमत के कारण कार्य सिद्धान्त को निम्न प्रकार देखा जा सकता है।

कारणवाद-- पाली भाषा में निबद्ध निकायों में कार्य कारण पर विशेष साक्षात् विवेचन नहीं प्राप्त होता है। उनमें केवल यही लिखा है कि अमुक वस्तु के उत्पन्न होने पर अमुक वस्तु उत्पन्न होती है। इस सम्बन्ध में हेतु पंचक का निर्देश किया गया है। स्थविरवाद के मतानुसार हेतु शब्द सीमित अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। उनमें हेतु शब्द का प्रयोग लोभ, मोह, और द्वेष के द्वारा चित्त विकार के लिये किया गया है। हेतु मुख्यतः तीन माने गये हैं। (१) लोभ रहित, (२) द्वेष रहित और (३) मोहरहित ये तीन कुशल हेतु हैं।

प्रत्यय शब्द का प्रयोग कार्य कारण के किसी भी स्वरूप के बोधनार्थ किया गया है अर्थात् एक वस्तु के दूसरी वस्तु के साथ के सम्बन्ध को प्रत्यय के द्वारा बोध कराया है।

सर्वास्तिवादी और योगाचार सिद्धान्त में इन हेतुओं का विपरीत अर्थ किया गया है। उनके मतानुसार हेतु का अर्थ प्रधान रहता है और प्रत्यय का अर्थ तदनुकूल साधन अर्थात् सामग्री लिया गया है। अतः हेतु प्रधान कारण और प्रत्यय अप्रधान कारण होता है। स्थविरवाद के मतानुसार प्रत्ययों की संख्या २४ है। सर्वास्तिवादी के मत में ५ हेतु, ४ प्रत्यय, और ५ फल होते हैं।

इस कारणवाद को प्रतीत्य समुत्पादवाद कहा गया है। प्रतीत्यसमुत्पादवाद के बारह भेद माने गये हैं। इसी को मनःचक्र कहा है। इस मनःचक्र के कारण ही संसार की स्थिति बताई गई है। प्रतीत्यसमुत्पादवाद के १२ भेदों को निदान कहते हैं। जिनके नाम इस प्रकार हैं—

(१) अविद्या, (२) संस्कार, (३) विज्ञान, (४) नामरूप, (५) षडायन इन्द्रियां, (६) स्पर्श, (७) वेदना, (८) तृष्णा, (९) उत्पादन, (१०) भव, (११) जाति, (१२) जरा एवं मृत्यु,।

इनका विस्तृत विवेचन बौद्ध दर्शन में किया गया है। यहां आवश्यक न होने के कारण केवल नाम परिगणन करके छोड़ दिया है। इनका कार्य-कारण सम्बन्धी विभाजन निम्न प्रकार देखिए।

अतीत का कारण तथा वर्तमान का कार्य—

अतीत का कारण—(१) अविद्या, और (२) संस्कार।

वर्तमान कार्य—(३) विज्ञान, (४) नामरूप, (५) षडायन, (६) स्पर्श, (७) वेदना।

वर्तमान का कारण और भविष्य का कार्य—

वर्तमान का कारण—(८) तृष्णा, (९) उपादान, (१०) भव।

भविष्य का कार्य—(११) जाति, (जन्म), (१२) जरा मृत्यु।

इस कारण कार्य की शृंखला को सर्वास्तिवादी और स्थविर सामान्य रूप से मानते हैं। महांयान सिद्धान्त के अनुसार कुछ भिन्नता प्राप्त होती है। माध्यमिकों ने प्रतीत्य समुत्पादवाद की सत्ता नहीं स्वीकार की। योगाचार में इस वाद का प्रमुख स्थान है। यह प्रतीत्य समुत्पादवाद नामक सिद्धान्त बौद्ध दर्शन की मूलभित्ति है। इसके अतिरिक्त बौद्ध दर्शन में पंचस्कन्ध का भी महत्व पूर्ण स्थान है। जिसका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है:-

पञ्चस्कन्ध—स्कन्ध शब्द का अर्थ समुदाय है। बुद्ध के मत में आत्मा स्वतन्त्र द्रव्य नहीं है वह तो पांच स्कन्धों का संघात (समूह) मात्र है। इन स्कन्धों के नाम निम्न प्रकार हैं-(१) रूप, (२) वेदना, (३) संज्ञा, (४) संस्कार, (५) विज्ञान। बुद्ध का मत है कि हम जिसको व्यक्ति को जिस नाम से सम्बोधित करते हैं, वह उन्हीं पांच स्कन्धों का संघात मात्र है। बौद्ध दर्शन के ग्रन्थों में इन पांच स्कन्त्रों के विषय में अनेक मत प्रचलित हुये हैं। प्राणों को केवल नाम रूप माना है। यहां रूप से तात्पर्य भौतिक शरीर और नाम से मानसिक व्यापारों से है। शरीर और मन के पारस्परिक संयोग से ही प्राणी की स्थिति मानी गई है। नाम के चार भेद किये गये हैं, जिनके नाम ये हैं:—

(१) विज्ञान, (२) वेदान्त, (३) संज्ञा और (४) संस्कार।

पुनर्जन्म—बौद्ध दर्शन में पुनर्जन्म को स्वीकार किया है। बौद्ध दर्शन के मत के अनुसार प्राणी अपने कर्मो के अनुसार पुनर्जन्म को प्राप्त करता है। बौद्ध धर्म के अनुसार आत्मा नित्य पदार्थ नहीं है। वैदिक सिद्धान्त के अनुसार आत्मा नित्य है और उसका पुनर्जन्म होता है। बौद्ध दर्शन में यह एक नई बात है कि आत्मा अनित्य होते हुए भी पुनर्जन्म ग्रहण करता है। इस सम्बन्ध में एक दीपशिखा का उदाहरण दिया गया है कि जिस प्रकार दीपक की शिखा प्रतिक्षण बदलने पर भी एक समान दिखाई पड़ती है, उसी प्रकार आत्मा प्रत्येक क्षण में परिवर्तनशील होने पर भी एक समान दिखाई पड़ती है।

अभौतिकवाद— बुद्ध आत्मा को अनित्य मानते हैं और अभौतिक भी

मानते हैं। पांच स्कन्धों के संघात को आत्मा मानने वाले बौद्ध दर्शन में संसार के अतिरिक्त अन्य लोकों की भी सत्ता मानी गई है। बुद्ध आत्मा को अनित्य और ईश्वर को नहीं मानते थे। तथापि भौतिकवाद का खण्डन डटकर किया है।

यहां बौद्ध के विरोधी मान्यताओं को देखकर भ्रम उत्पन्न होता है जो आत्मा को अनित्य और ईश्वर को नहीं मानता है। वह भौतिकवाद को क्यों नहीं मानता है, क्योंकि यही देखने में आता है। जो आत्मा और ईश्वर की सत्ता को नहीं मानता है वह भौतिकता का जोरदार समर्थक होता है। परन्तु बुद्ध का मत एवं मान्यता इसके विपरीत प्राप्त होती है। इसका क्या कारण है?

वास्तविक रूप में इसका पूर्ण परिचय 'पाया सिराजञ्ञसुत्त" का अध्ययन करने से प्राप्त हो सकता है। अंगुत्तर निकाय मे इस प्रकार कहा है कि ईश्वर और जीव में कोई अन्तर नहीं है। दोनों एक ही हैं, भिन्न नहीं। परन्तु ऐसा स्वीकार करने पर ब्रह्मचर्य वास नहीं हो सकता है। इसका आशय यह है कि तथागत बुद्ध न तो केवल भौतिकवादी थे और न केवल अनात्मवादी थे अपितु वे मध्य मार्ग को मानते थे। इसीलिये वे परलोक और पुनर्जन्म की सत्ता मानते थे।

उपर्युक्त विवेचन से यह प्रतीत होता है कि बौद्ध दर्शन के (१) चार आर्य सत्यों की मान्यता, (२) प्रतीत्यसमुत्पादवाद, (३) अनात्मवाद, (४) अनीश्वर-वाद, (५) अभौतिकवाद (६) पुनर्जन्म ये प्रमुख सिद्धान्त थे जिन पर बौद्ध दर्शन की आधार भित्ति टिकी हुई है।

अश्वघोष की रचनाओं का गम्भीर अध्ययन करने पर उपर्युक्त बौद्ध दर्शन के सिद्धान्तों का परिचय प्राप्त हो जाता है। आर्य सत्यों का निर्देश करते हुए अश्वघोष ने लिखा है कि—

दुःखं समुदयश्चार्थो निरोधश्च यथाक्रमम्।
व्युपशमश्च चत्वारि त्वार्यसत्यं विभाव्यताम्॥

बौद्ध दर्शन में प्रतिपादित चार आर्य सत्यों में प्रथम आर्य सत्य 'दुःख' कहा गया है। बौद्ध दर्शन दुःखवाद के नाम से अति प्रसिद्ध है। अश्वघोष ने दुःखवाद का विस्तार के साथ वर्णन किया है और उसको बड़े ही रोचक ढंग से समझाने का प्रयास किया है। उदाहरणार्थ निम्न श्लोक देखिये—

आकाशयोनिः पवनो यथा हि यथा शमी गर्भाशयो हुताशः।
आपो यथान्तर्वसुधं मिलन्ति दुःखं तथा चित्तशरीरयोनिः॥

अश्वघोष ने मुक्तावस्था में आत्मा न तो पृथिवी में जाती है, न जल में, न रस में और न आकाश में जाती है अपितु जिस प्रकार दीप निवृत्ति दशा में शान्ति को प्राप्त होता है उसी प्रकार आत्मा मुक्तावस्था में क्लेश नाश से शान्ति को प्राप्त करता है। इसीलिये बौद्ध दर्शन में मोक्ष को निर्वाण कहा गया है। अश्वघोष ने इसी दृष्टान्त को पुष्ट करते हुए लिखा है कि—

दीपो यथा निर्वृत्तिमभ्युपेतो नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम्।
दिशं न काञ्चिद् विदिशं न काञ्चित् स्नेहक्षयात्केवलमेतिशान्तिम्॥

अश्वघोष ने शरीर की क्षणभंगुरता का निर्देश करते हुए लिखा है कि—

शरीरमानादपि मृन्मयाद्घटाद्, इद तु निःसारतमं मतं मम।
चिर हि तिष्ठेद् विधिवद् धृतो घटः समुच्छ्रयोऽयं सुधृतोऽपि भिद्यते॥

यह निश्चित है कि अश्वघोष बौद्ध दर्शन से अत्यधिक प्रभावित थे। परन्तु उन्होंने बौद्ध दर्शन के आचार मार्ग का और नैतिक आदर्श का प्रचुर वर्णन अपने ग्रन्थों में किया है। बुद्धचरित के सप्तम सर्ग में नैतिक आदर्श पर अधिक बल दिया है। उन्होंने संसार के कारण अज्ञान का अस्तित्व वर्णन करते हुए कहा है कि—

अज्ञानकर्मतृष्णाश्च ज्ञेयाः संसारहेतवः।
स्थितोऽस्मिंस्त्रितये जन्तुस्तत् सत्वं नाति वर्तते॥

अश्वघोष केवल बौद्ध दर्शन के ही ज्ञाता हों, यह बात नहीं। वे उपनिषद्, वेदान्त, सांख्य, योग आदि दर्शन शास्त्रों के पूर्ण ज्ञाता थे। उन्होंने अपने काव्यों

में दर्शन के सूक्ष्म तत्वों का बड़े ही सरल ढंग से काव्यमयी भाषा में कहा है—श्वेताश्वतर उपनिषद् में काल, स्वभाव, नियति तथा सुख-दुःख का विवेचन किया गया है। उसी प्रकार उन्होंने सौन्दरानन्द में कहा है कि—

प्रवृत्ति दुःखस्य च तस्य लोके तृष्णादयो दोषगुणाः निमित्तम्।
नवेश्वरो न प्रकृतिर्न कालो नापि स्वभावो न विधिर्यदृच्छा॥

गीता का अश्वघोष पर व्यापक प्रभाव पड़ा था। यही कारण है कि बुद्धचरित में सांख्य दर्शन के सिद्धान्तों का यत्र-तत्र संकेत किया गया है। उदाहरणार्थ बुद्धचरित का एक श्लोक निम्न प्रकार देखिये—

तत्र सम्यङ् मतिर्विघान्मोक्षकामचतुष्टयम्।
प्रतिबुद्धाप्रबुद्धौ च व्यक्तमव्यक्तमेव च॥

जिस प्रकार सांख्य दर्शन में व्यक्त, अव्यक्त और ज्ञ के सम्यक् ज्ञान से तीनों दुःखों का विघात होता है। इसी मत का संकेत उपर्युक्त श्लोक में किया गया है। सांख्य कारिकाकार ईश्वर कृष्ण ने भी लिखा है कि—

दृष्टवदानुश्रविकः स ह्यविशुद्धिक्षयातिशययुक्तः।
तद्विपरीत श्रेयान् व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानात्॥

सांख्य दर्शन में तत्व ज्ञान पर विशेष बल दिया गया है। अश्वघोष ने अराड् दर्शन में सांख्य के तत्वों के ज्ञान की आवश्यकता का समर्थन करते हुए लिखा है कि—

तत्र तु प्रकृतिं नाम विद्धि प्रकृतिं कोविद।
पञ्चभूतान्यहंकारं बुद्धिमव्यक्तमेव च॥

अश्वघोष ने न्याय दर्शन के गुण और गुणी के भेदवादी सिद्धान्त का खण्डन करने के उद्देश्य से गुण और गुणी में एकता प्रतिपादित की है। सांख्य दर्शन भी गुण और गुणी में भेद नहीं मानता है। इसी भाव को व्यक्त करते हुए अश्वघोष ने लिखा है कि—

गुणिनो हि गुणानां च व्यतिरेको न विद्यते।
रूपोष्णाभ्यां विरहितो न ह्यग्निरूपं लभ्यते॥

सांख्य दर्शन तत्वों में प्रकृति को मुख्य तत्व मानता है। परन्तु अश्वघोष ने "सत्व" को प्रधान तत्व स्वीकार करते हुए लिखा है कि—

प्रकृतिश्च विकारश्च जन्म मृत्युर्जरैव च।
तत्तावत् सत्त्वमित्युक्तं स्थिरसत्वं परे हि तत्॥

अश्वघोष ने सांख्य दर्शन सम्बन्धी अपने उत्कृष्ट ज्ञान का यत्र-तत्र उल्लेख किया है। साथ ही उन्होंने योग दर्शन सम्बन्धी अपने ज्ञान का परिचय भी प्रस्तुत किया है। जिस प्रकार योग दर्शन में पञ्च क्लेशों का वर्णन किया गया है उसी प्रकार अश्वघोष ने भी पञ्च क्लेशों का वर्णन करते हुए लिखा है कि—

इत्यविद्यां हि विद्वान्स पञ्च पर्वां समीहते।
तमो मोहं महामोहं तामिस्त्रद्वयमेव च॥

इस प्रकार अश्वघोष की दार्शनिकता पर विवेचन करने पर यह सिद्ध होता है कि अश्वघोष प्रौढ़ दार्शनिक प्रकाण्ड विद्वान् थे। यद्यपि उनके ग्रन्थों में प्रायः सभी दर्शनों सम्बन्धी विचारों का संकेत प्राप्त होता है तथापि वे पूर्ण बौद्ध धर्मावलम्बी तथा बौद्ध दर्शन के समर्थक एवं प्रचारक थे। उनकी दार्शनिक विद्वत्ता पर किञ्चित् भी सन्देह का अवसर नहीं है। अतः निश्चय ही अश्वघोष दार्शनिक अप्रतिम विद्वान् और असाधारण प्रतिभा सम्पन्न महाकवि थे।

अश्वघोष का वैदुष्य—

वैसे तो प्रायः सभी कवि प्रतिभा सम्पन्न और साधारण जनता की अपेक्षा अधिक सहृदय तथा विलक्षण विद्वान् होते हैं। उनमें भी महाकवि तो समाज में क्रान्ति उपस्थित करके समाज के दुर्गुणों को दूर करके स्वच्छ और निर्मल सुखी सम्पन्न बनाने में पूर्ण सहयोग देता है। कवि को प्रजापति भी कहा गया है। अश्वघोष इन असाधारण महाकवियों में से एक हैं। उनकी विवेक शक्ति और असाधारण विद्वत्ता एवं सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का परिचय उनके काव्यों से स्पष्ट रूप में प्राप्त हो रहा है। कहीं वे वैदिक ज्ञान सम्बन्धी अपना परिचय प्रस्तुत करते हुए प्रतीत होते हैं तो कहीं विविध दर्शनों से सम्बन्धित सिद्धान्तों

के प्रतिपादन, खण्डन, मण्डन आदि के द्वारा अपना अप्रतिम वैदुष्य प्रकट करते हुए प्रतीत होते हैं। वैदिक "औवंशेय" शब्द का बुद्धचरित के एक श्लोक में प्रयुक्त करके अपना वैदिक अनुष्ठान सम्बन्धी ज्ञान प्रकटित किया है। जैसा कि निम्न श्लोक से स्पष्ट है—

यानं विहायोपयमौ ततस्तं पुरोहितो मन्त्रधरेण सार्धम् ।
यथा वनस्थं सह वामदेवो रामं रामं दिदृक्षुर्मु निरौर्वशेयः ॥

कहीं कहीं पर उन्होंने अपने गीता सम्बन्धी अध्ययन की छाप अपने काव्यों में यत्र-तत्र अंकित कर दी है। जैसा कि "न जायते म्रियते वा कदाचित्" इत्यादि गीता के भाव को व्यक्त करने के लिये लिखा है—

जायते जीर्यते चैव वाध्यते म्रियते च यत् ।
तद् व्यक्तमिति विज्ञेयमव्यक्तं तु विपर्ययात् ॥

अपि च—

अस्य क्षेत्रस्य विज्ञानात् क्षेत्रज्ञ इति संज्ञि च ।
क्षेत्रज्ञ इति चात्मानं कथयन्त्यात्मचिन्तकाः ॥

अश्वघोष की मोक्ष धारणा गीता के अधिक समीप प्रतीत होती है। उन्होने लिखा है कि—

उन्मीलितस्यापि जनकस्य मध्ये निमीलितस्यापि तथैव चक्षुः ।
प्रज्ञामय यस्य हि नास्ति चक्षुश्चक्षुर्न तस्यास्ति स चक्षुषोऽपि ॥

महाकवि अश्वघोष महाभारत आदि पुराणों के भी ज्ञाता थे। उनको पौराणिक कथाओं का सम्यक् परिज्ञान था। भीष्म की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए लिखा है कि—

भीष्मेण गंगोदरसंभवेन रामेण रामेण च भार्गवेण ।
श्रुत्वा कृतं कर्म पितुः प्रियार्थं पितुस्त्वमप्यर्हसि कर्तु मिष्टम् ॥

महाकवि अश्वघोष साकेत निवासी थे। अतः स्वाभाविक रामायण के प्रति प्रेम होना चाहिये। यही कारण है कि उन्होंने अपनी रचनाओं में रामायण

के पात्रों का तथा रामायण सम्बन्धी घटनाओं का यत्र-तत्र बड़े आदर के साथ उल्लेख किया है ।

यद्यपि अश्वघोष महापण्डित एवं प्रकाण्ड दार्शनिक विद्वान् थे और साथ ही कोमलकान्त तथा सरस काव्य रचना करने में अद्वितीय एवं सफल महाकवि थे । तथापि उन्होंने अपने ग्रन्थों में सांख्य न्याय वेदान्त आदि दर्शनों का विवेचन किया है, जिसने उनके दार्शनिक सम्बन्धी प्रचुर पाण्डित्य का परिचय यथास्थान उपलब्ध होता है तथापि वे बौद्ध दर्शन के आचार्य माने जाते हैं । यही कारण है, कि उन्होंने जितना अधिक बौद्ध दर्शन के सिद्धान्तों का विवेचन और प्रचार किया है, उतना अन्य दर्शन का नहीं । सांख्य और बौद्ध दर्शन से वे बहुत प्रभावित थे और प्रकाण्ड विद्वान् थे । इस विषय में किसी को यत्-किञ्चित सन्देह का अवसर ही नहीं है ।

वे दर्शन तथा साहित्य के अद्वितीय विद्वान् होने के साथ साथ व्याकरण शास्त्र के भी लब्धप्रतिष्ठ विद्वान थे । उन्होंने अपने ग्रन्थों में प्रायः द्विकर्मक धातुओं का अधिक प्रयोग किया है, और प्रति अभि आदि उपसर्गों का भी प्रयोग किया है, फिर भी रचना के पद लालित्य में कोई कमी नहीं आयी है । तालजङ्घ के कौटिल्य शास्त्र अर्थात् तालजङ्घ कृत अर्थशास्त्र के पूर्ण ज्ञाता थे ।

अश्वघोष एक रस सिद्ध महाकवि थे । उनके बुद्धचरित में अनेक रसों का सफल परिपाक दृष्टिगोचर होता है । इसी प्रकार अलङ्कार योजना में, विविध छन्दों में, रचना करने में, रीति संघटना में भाव और भाषा सौष्ठव आदि में सफल महाकवि थे । अतः यह कहना चाहिये वे विविध शास्त्रों के एवं अलङ्कार शास्त्र के व्याकरण एवं दर्शन शास्त्र के सार्वभौमिक विद्वान् थे ।

महाकवि ने अपने काव्यों में अलङ्कारों की दुरूह योजना कहीं नहीं की अपितु स्वाभाविक उपमा आदि अलङ्कारों की संयोजना करके काव्य को प्रभावकारी बनाने में अपूर्व सफलता प्राप्त की । प्रो० गनंर के मतानुसार अश्वघोष

उपमानों के चयन में मनोवैज्ञानिक रुचि रखते थे। उन्होंने अपने काव्यों में अनेक प्रकार के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व के अनेक चित्रों का अवलोकन कराया है। इस विषय में महाकवि पर रामायण का प्रचुर प्रभाव परिलक्षित होता है।

उदाहरणार्थः—धर्म नदी का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है कि—

"प्रज्ञाम्बुवेगां स्थिरशीलवप्रां, समाधिसीतां व्रतचक्रवाकाम्।
अस्योत्तमां धर्मनदीम् प्रवृत्तां, तृष्णार्दितः पास्यति जीवलोकः"॥

इसी प्रकार कहीं २ दार्शनिक उपमा का भी सफल प्रयोग किया है। यथाः—

"सूत्रेण बद्धां हि यथा विहंगो, व्यावर्तते दूरगतोऽपि भूयः।
अज्ञान सूत्रेण तथावबद्धो, गतोऽपि दूरं पुनरेति लोकः।

महाकवि ने प्रकृति का बड़ी सूक्ष्मता से निरीक्षण किया था, जैसा कि उनके निम्नलिखित श्लोक से उनका प्रकृति प्रेम और प्रकृति की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का परिचय प्राप्त होता है।

"कासांचिदासां वदनानि रेजु र्वनान्तरेभ्यश्चलकुण्डलानि।
व्याविद्धवर्णेभ्य इवाकरेभ्यः पद्मानि कारण्डवव्याहृतानि।

कामिनी के मलिन मुख का वर्णन करते हुए मलिन चन्द्रमा से उपमा देते हुये वर्णन किया है कि—

"विवर्ण वक्त्रा न रराज चाशु। विवर्ण चन्द्रेव हिमागमे द्यौः"।

इसी प्रकार अन्य अलङ्कारों की योजना में सफलता प्राप्त की है। रूपक, उत्प्रेक्षा और अर्थान्तरन्यास आदि अलङ्कारों का गम्भीर चित्रण किया है। उत्प्रेक्षा अलङ्कार का एक उत्कृष्ट उदाहरण निम्न प्रकार है—

"सा चक्रवाकीव भृशं चुकूज, श्येनाग्र-पक्ष-क्षत-चक्रवाका।
विस्पद्धः मानेव विमान-संस्थैः, परावतैः कूजनकूलकण्ठैः"।

वे भाषा सौष्ठव मे सिद्धहस्त महाकवि थे। कहीं २ तो उनकी भाषा में ध्वनि इस प्रकार पाठकों को आकर्षित कर लेती है कि वे काव्यानन्द के समक्ष

अन्य अपनी पारिवारिक सभी समस्याओं को भूलकर तन्मय हो जाते हैं। उदाहरणार्थ निम्न श्लोक देखिये:—

"इभाश्च विक्षिप्तविटङ्कवावहः, प्रसक्त--पारावत-दीर्घ-निस्वनाः ।
विना कृतास्तेन सहावरोधनैः भृशं रुदन्तीव विमान पङ्क्तयः" ॥

महाकवि वही होता है, जो रससिद्ध रचना करने में सक्षम होता है। इस दृष्टि से अश्वघोष नितान्त सफल और महाकवि माने जाते हैं। उन्होंने बुद्धचरित नामक महाकाव्य में अनेक रसों का सफल परिपाक प्रस्तुत किया है। मुख्य रूप से करुण श्रृङ्गार और शान्त रस का चित्रण किया है। इससे स्पष्ट सिद्ध है कि वे रससिद्ध महाकवि थे। बुद्धचरित के बारह सर्गों मे दार्शनिक तत्वों का विवेचन करते हुए भी श्रृङ्गार रस का सफल एवं आकर्षक वर्णन किया है। संयोग श्रृङ्गार का सयत वर्णन निम्न प्रकार किया है—

"मुहुर्मुहुरब्याजसृतनीलांशुका परा ।
आलक्ष्य रशनारेजे स्फुरद्विद्युदिवक्षपा ।"

अपि च:

सा हासहंसा नयनद्विरेफा, पति-स्तनात्युन्नत-पद्मकोशा ।
भूयो बभासे स्वकुलोदितेन, स्त्री-पद्मनी-नन्ददिवाकरेण ॥

महाकवि ने जिस प्रकार रस का सफल परिपाक किया है उसी प्रकार उन्होंने अपने काव्यों में विविध छन्दों की योजना करके पिङ्गल-शास्त्र सम्बन्धी ज्ञान का परिचय दिया है। यही कारण है कि उनकी कविता कामिनी रस, अलङ्कार, छन्द, रीति, गुण, ध्वनि आदि से सर्वथा सुसज्जित है। जिस प्रकार अश्वघोष ने मनुष्यों के मनोभावों का वर्णन पूर्ण सफलता के साथ किया है उसी प्रकार पशुओं के मनोभावों का भी वर्णन कवि ने पूर्ण सतर्कता और सशक्तता के साथ किया है। उदाहरणार्थ निम्न श्लोक देखिये—

सुवर्णगौराश्च किरातसंघा मयूरपत्रोज्ज्वलगात्रलेखा ।
शार्दूलप्रातप्रतिमागृहेभ्यो निष्पेतुरुद्गार इवाचलस्य ॥

नगान्नगस्योपरि देवदारूर्नायासमन्तः कपयो विचेरूः ।

तेभ्यः फलं नापुरतोपजग्मुर्मोघप्रसादेभ्य इवेश्वरेभ्यः ।।

महाकवि ने संसार के भोगों के प्रति अपने दृष्टिकोण को व्यक्त करते हुए लिखा है—

गुरूणि वासांस्य गुरूणि चैव सुखायशेते ह्यसुखाय धर्मे ।

चन्द्रांशवश्चन्दनमेव चोष्णे सुखाय दुःखाय भवन्ति शोते ।।

मृत्यु की अनिवार्यता और मृत्यु सावधान रहने के लिये लोक को उपदेश देते हुए महाकवि ने लिखा है कि—

यावन्त हिंस्रः समुपैति कालः शमाय तावत्कुरु सौम्य बुद्धिम् ।

सर्वास्वस्थास्विह वर्तमानं सर्वाभिसारेण निहन्ति मृत्युः ।।

महाकवि ने वृद्धावस्था जन्य विकारों का वर्णन करते हुए अपने अनुभव का परिचय निम्न श्लोक के द्वारा व्यक्त किया है कि—

स्मृतेः प्रमोषो वपुषः पराभवो रतेः क्षयो वाक् श्रुतिश्चक्षुषां ग्रहः ।

श्रमस्य योनिर्बलवीर्यबन्धो जरा समो नास्ति शरीरिणां रिपुः ।।

महाकवि ने संसार की असारता प्रकटित करने के लक्ष्य से शरोर की क्षण-भंगुरता का उपदेश देते हुए अपने विचारों को इस प्रकार व्यक्त किया है—

शरीरमात्रादपिमृन्मयाद्घटाद् इदं तु निःसारतमंमतं मम ।

चिरं हि तिष्ठेद् विधिवद् धृतो घटः समुच्छ्रयोऽयं सुधृतोऽपिभिद्यते ।।

महाकवि ने दाम्पत्य जीवन की उत्कृष्टता और पति-पत्नी के प्रेम का उत्कृष्ट वर्णन करते हुए लिखा है कि—

अन्योन्यसंरागविवर्धनेन तद्द्वन्दामन्योयशरीरमच्च ।

क्लमान्तरेऽन्योन्यविनोदनेन सलीलमन्योन्यममीदच्च ।।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट रूप से सिद्ध हो जाता है कि महाकवि अश्वघोष विविध शास्त्रों और दर्शन ग्रन्थो के मर्मज्ञ तथा बौद्धदर्शन के

अधिकारी विद्वान् थे और साथ ही व्याकरण, साहित्य एवं भौगोलिक आदि विद्याओं के पूर्ण ज्ञाता थे। ऐसा कोई विषय अछूता नहीं छोड़ा जिस पर अश्वघोष ने पाण्डित्य पूर्ण न लिखा हो। उन्होंने दर्शन के सूक्ष्म सिद्धान्तों को काव्यमयी भाषा में पूर्ण सफलता के साथ व्यक्त किया है। सांख्य दर्शन जैसे रूखे सिद्धान्तों को भी अपने काव्यों में रोचकता और सरलता के साथ वर्णन किया है। अतः निश्चित रूप से अद्वितीय प्रतिभा सम्पन्न महाकवि तथा विविध दर्शनों के प्रकाण्ड विद्वान् थे। इस प्रकार वे सिद्ध महाकवि और प्रखर पाण्डित्य-युक्त बौद्ध दर्शन शास्त्रियों में सर्वश्रेष्ठ महापण्डित थे।

अश्वघोष और उनकी रचना-शैली—

शैली शब्द का अर्थ ढंग अथवा रीति होता है, प्रत्येक कवि की अपनी कोई न कोई शैली होती है। वामनाचार्य के युग में तो शैली को काव्य की आत्मा ही स्वीकार किया जाता था जैसा कि वामनाचार्य के "रीतिरात्मा-काव्यस्य" इस वाक्य से स्पष्ट प्रतीत होता है। रचना-शैली के माध्यम से कवि पाठकों की रुचि को काव्य की ओर आकर्षित करता है जिससे प्रभावित पाठक कवि के द्वारा विरचित काव्य का रसास्वाद प्राप्त करता है। शैली के द्वारा ही कवि का व्यक्तित्व और रचना की उदात्तता, सरसता और कठोरता आदि का अनुभव एवं परिचय प्राप्त होता है। कुछ कवि कठोर शब्दावली का प्रयोग करते हुए काव्य की रचना करते हैं, तो कुछ कवि सरल एवं सरस पदावली का प्रयोग अपनी रचना में करते हैं, कुछ कवि दोनों प्रकार की कठोर और सरल पदावली का रचना में प्रयोग करते हैं, तो इनमें तीन प्रकार की शैली में जो कठोर पदावली का प्रयोग करता है उसकी कठोर शैली कही जाती है, जो सरल पदावली का प्रयोग करता है उसकी सरल शैली कही जाती है और जो सरल और कठोर दोनों प्रकार की मिश्रित पदावली का प्रयोग करता है, उसकी मिश्रित शैली मानी जाती है।

अश्वघोष दार्शनिक और महाकवि दोनों थे, परन्तु उनकी शैली की यह विशेषता है कि चाहे उन्होंने दर्शन के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया और चाहे

शृङ्गार रस का वर्णन किया हो, दोनों स्थलों पर उन्होंने सरल शैली अपनाकर दर्शन जैसे नीरस सिद्धान्तों को बड़ी सरलता से हृदयंगम कराने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है। काव्य के क्षेत्र में रस वर्णन आदि के प्रसंग में क्या कहना ? इस प्रकार अश्वघोष की रचना-शैली सरल, सरस और सहज बोधगम्य शैली है। कोमल और आकर्षक पदावली का प्रयोग करके विषय को भावपूर्ण बनाने में पूर्ण सफलता अर्जित की है :

अश्वघोष की रचनाओं में वैदर्भी रीति का प्रचुर एवं सफल प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। वैदर्भी रीति का लक्षण निम्न प्रकार है—

माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णैरचना ललितात्मिका।

अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भीरीतिरिष्यते ॥

वैदर्भी रीति की उपर्युक्त सभी विशेषतायें अश्वघोष के काव्यों में पूर्ण सफलता के साथ प्राप्त होती हैं। उदाहरणार्थ वैदर्भी रीति का एक श्लोक देखिये—

वाता ववुः स्पर्शसुखा मनोज्ञा दिव्यानि वासांस्यवपातयन्तः।

सूर्यः स एवाभ्यधिकं चकाशे जज्वाल सौम्यार्चिरनीरितोऽग्निः ॥

महाकवि ने संसार की असारता का समर्थन बड़े ही रोचक ढंग से काव्यमयी भाषा में व्यक्त किया है। वृद्धावस्था की अपरिहार्यता, रोगों की अजेयता आदि नीरस विषयों का सूत्रात्मक शैली में इस प्रकार चित्र खींचा है कि पाठक शब्दचित्र मात्र से तन्मय होकर भाव-विभोर हो जाता है। सूत्रात्मक शैली का कारण उनकी दार्शनिक विचारधारा ही है। अत्यल्प शब्दों मे ही वर्ण्य विषय का चित्र आंखों के सामने उपस्थित कर देते हैं। महाकवि की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति एव सूत्रात्मक शैली का एक श्लोक दर्शनीय है—

तस्याज शस्त्रं विममर्श शास्त्रं, शमं सिषेवे नियमं विषेहे।

वशीव कञ्चित् विषयं भेजे पितेव सर्वान् विषयान् ददर्श ॥

सूत्रात्मक शैली के अतिरिक्त उनकी शैली की एक विशेषता मुहावरेदार पदावली का सरस प्रयोग भी है। संक्षेप कथन के द्वारा पाठक का मन आकर्षित

कर लेना अश्वघोष की अपनी अद्भुत विशेषता है, जैसा कि ज्ञान के महत्व का वर्णन करते हुए लिखा है कि—

"बुद्धतत्त्वे प्रदीप्ते च कामभावो न तिष्ठति ।"

महाकवि ने संसार के कर्मों का फल कर्ता को अवश्य भोगना पड़ता है, लोक को यह उपदेश देते हुए लिखा है कि—

"य कर्त्ता स हि भोक्तास्य कर्मणस्तु फलं ध्रुवम् ।"

कर्म के बिना मनुष्य को कहीं भी फल (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) नहीं प्राप्त हो सकते हैं। अतः शरीरधारी के लिये कर्म करना अनिवार्य है, यह उपदेश देते हुए महाकवि ने लिखा है कि—

"इहामुत्रफलं नास्ति कृतेऽकर्मणा बिना ।"

धर्म की प्रधानता का प्रतिपादन करते हुए कवि ने कहा है कि इस नश्वर संसार में केवल धर्म ही सबसे बड़ा धन है, अतः धर्म की प्रभुता स्वीकार करके धर्मानुकूल आचारण करना चाहिये। जैसा कि अश्वघोष ने स्वयं लिखा है कि—

"अनित्ये जीवलोके हि धर्मो हि परमम् धनम् ।"

संसार की अनित्यता का प्रतिपादन करने के साथ शरीर की क्षणभंगुरता द्योतित करते हुए महाकवि ने लिखा है कि—

अस्थिचर्म वसामांसमलमूत्रमयं वपुः ।
पूतिमत् पश्यतो लोके देहासक्तिर्न जायते ॥

महाकवि ने अपने अप्रतिम पाण्डित्य और उत्कृष्ट प्रतिभा के अनुरूप सूक्ष्म एवं भावात्मक वर्णनों को स्थूल रूप में वर्णन बड़े रोचक ढंग से किया है। यही कारण है कि उनकी रचनाओं में धृति, बुद्धि, धर्म आदि भावात्मक वर्णनों का स्थूल रूप में चित्रित करने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है।

सांसारिक कामवासना की निन्दा करते हुए लोक को इस काम-विकार से दूर रहने का उपदेश दिया है। उन्होंने लिखा है कि—

युवत्यपि राज्यं दिवि देवतानां शतक्रतौ वृत्रभयात्प्रणष्टे ।
दर्पान्महर्षोनपि वाहयित्वा कामेष्वतृप्तो नहुषः पपात ॥

जहां अश्वघोष की रचना में अनेक विशेषतायें दृष्टिगोचर होती है वहां यह एक अन्य विशेषता भी प्राप्त होती है कि संस्कृत के अन्य कवियों के समान एक शब्द के द्वारा सम्पूर्ण श्लोक रचना बड़ी सरलता के साथ कर डालते हैं। उदाहरणार्थ अश्वघोष का निम्न श्लोक दर्शनीय है—

सा पद्म रागं वसनं वसानां पद्मानना पद्मदलायताक्षी।
पद्मा विपद्मा पतितेव लक्ष्मीः शुशोष पद्मस्रगिवातपेन।।

प्रस्तुत श्लोक में पद्म शब्द का अनेक बार प्रयोग किया है, यद्यपि भारवि, माघ आदि कवियों की कृतियों में केवल एक अक्षर के माध्यम से श्लोकों की रचना की गई है, परन्तु जो स्वाभाविकता एवम् सरसता अश्वघोष की कविता में दृष्टिगोचर होती है. वह अन्य कवियों की कविता में स्वाभाविकता और सरलता नहीं प्राप्त होता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि अश्वघोष दार्शनिक प्रकाण्ड विद्वान् होते हुए अपने काव्यों में कठोरता एवं अर्थबोध की दुरूहता नहीं आने दी, क्योंकि उन्होंने दार्शनिक जैसे नीरस विषय का वर्णन किया हो और क्यों न शृङ्गार जैसे सरस विषय का वर्णन किया हो, सर्वत्र उनकी रचना में सरलता और रोचकता का सागर तरङ्गित हो रहा है।

यद्यपि अश्वघोष की कृतियों में कालिदास जैसी उदात्तता भावप्रवणता एवं परिमार्जित प्रसाद गुणयुक्त शैली प्राप्त नहीं होती है, तथापि अश्वघोष की कृतियों में स्वाभाविक रमणीयता और आकर्षण शक्ति तथा प्रभावकारी चित्रों का दर्शन पग-पग पर मिलता है। अश्वघोष की रचना-शैली की एक विशेषता चित्रांकन शैली भी है। उन्होंने अपने काव्यों में प्राचीन राजाओं, महर्षियों आदि के उदात्त चरित्रों का भी चित्रण रामायण और महाभारत के प्रसंगों का भी वर्णन किया है, परन्तु अपने सिद्धान्त के प्रतिपादन में अथवा लोक को उपदेश देने के लिये रामायण और महाभारत के दृष्टान्तों का यथावसर निःसकोच भाव से ग्रहण करके वर्णन किया है।

महाकवि की रचना माधुर्य और ओज गुण से अनुप्राणित है और उनकी रचना पाठकों, सामाजिकों तथा श्रोताओं को रसास्वादन कराने में पूर्ण समर्थ

है। यही कारण है कि दर्शन जैसे दुरूह एवं दुर्बोध विषयों को भी काव्यमयी भाषा के द्वारा सरल, सरस एवं सुबोध बना दिया है। यह उनकी शैली की सबसे बड़ी विलक्षणता है। अतः यह कहने में कोई संकोच नहीं होना चाहिये कि "अश्वघोष दार्शनिक बीहड़ एवम् दुष्प्रवेश अरण्यानियों को भी अपने काव्य-शैली की विशेषता के द्वारा अहर्निश भ्रमण एवं मनोरंजन, क्रीड़ा करने योग्य उपवन बना दिया है।

उनकी रचनाओं में सर्वत्र अपूर्वता, ज्ञान की महत्ता, संसार की नश्वरता, शरीर की क्षणभंगुरता. धर्म की सर्वग्राह्य अनिवार्यता, अलङ्कारों की अनुकूल विषयानुसारिणी योजना, अनुकूल छन्द चयन, भाषा की सरसता तथा सरलता, रोचकता एवं भावों की सजीवता आदि अनेक गुण विद्यमान हैं, जिनके आधार पर हम सगर्व कह सकते हैं कि अश्वघोष महाकवि और दार्शनिक प्रकाण्ड विद्वान् थे और उनकी शैली रोचक, आकर्षक, सरल एवं विषयानुसारिणी है। आपकी शैली रसास्वाद कराने, लोकरंजन कराने आदि में सर्वथा समर्थ एवम् अतुलनीय है।

अश्वघोष और कालिदास—

अश्वघोष और कालिदास के समय के सम्बन्ध में विद्वानों में बड़ा मतभेद प्राप्त होता है। कुछ विद्वान् कालिदास को अश्वघोष से पहले मानते हैं और कुछ विद्वान् कालिदास को अश्वघोष का परवर्ती मानते हैं। यह एक अत्यन्त विवाद-मय प्रश्न बना हुआ है। हमारी समझ में अश्वघोष कालिदास से पूर्ववर्ती थे। उन्होंने कालिदास के लिये मार्ग प्रशस्त किया। अश्वघोष से कालिदास तक काव्यधारा पहुंचते पहुंचते अत्यधिक विकसित एवं परिमार्जित हो गई। यही कारण है कि अश्वघोष की अपेक्षा कालिदास की रचनायें अधिक सफल तथा रससिक्त हैं। अश्वघोष की रचनाओं का प्रभाव कालिदास की कृतियों पर परिलक्षित होता है। अश्वघोष ने सिद्धार्थ को देखने के लिये उत्सुक स्त्रियों का जो संकेतात्मक चित्र चित्रित किया है। इसी प्रकार कालिदास ने रघुवंश के सातवें सर्ग में अज को देखने के लिये स्त्रियों की उत्सुकता का विकसित एवं

स्पष्ट हृदयहारी वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त कुमारसम्भव के भी सप्तम सर्ग में शिव को देखने के लिये स्त्रियों की उत्सुकता का वर्णन किया है। अश्वघोष द्वारा चलाई हुई इस परम्परा को कालिदास से लेकर अन्य परवर्ती महाकवियों ने सहर्ष अपने अपने काव्यों में अपनाया है। अतः यह निश्चित सा हो रहा है कि अश्वघोष कालिदास से पूर्ववर्ती थे।

अश्वघोष और कालिदास की काव्य-कला का समीक्षात्मक अध्ययन करने पर कहीं कहीं पर्याप्त समानता प्राप्त होती है, परन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिये कि कालिदास ने सब कुछ अपने काव्यों में अश्वघोष का अनुकरण किया है। कालिदास की काव्य-कला पर अश्वघोष का प्रभाव भले हो, परन्तु कालिदास की काव्य-कला एकदम अनूठी है। ध्वन्यालोक में लिखा है कि 'सम्वादास्तु भवन्त्येव बाहुल्येन सुमेधसाम्" अर्थात् भिन्न-भिन्न समय अथवा भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न भिन्न व्यक्तियों द्वारा वर्णित एक विषय में समानता आ जाना कोई असम्भव बात नहीं है। कतिपय स्थानों पर कालिदास की कृतियों पर अश्वघोष का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है, अतः दोनों कवियों की रचनाओं में समानता का दर्शन होना अस्वाभाविक नहीं कहना चाहिये।

अश्वघोष की रचना में मुख्य रूप से दो रूढ़ियां प्राप्त होती हैं। प्रथम रूढ़ि उपवन में भ्रमणार्थ जाते हुये सिद्धार्थ के दर्शन के लिये उत्सुक स्त्रियों का वर्णन है, जिसका परवर्ती कवियों ने (कालिदास, भारवि, माघ, हर्ष, तथा बाणभट्ट आदि ने भी अनुकरण किया है। दूसरी रूढ़ि, वृक्षों के द्वारा वस्त्र और आभूषण प्रदान करने का वर्णन है, जिसकी समानता कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तल के चतुर्थ अंक में दृष्टिगोचर होती है। सौन्दरानन्द नामक महाकाव्य में अश्वघोष के निम्न श्लोक में वृक्षों के द्वारा आभूषण प्रदान करने का संकेत किया है, जो निम्न प्रकार देखा जा सकता है।

हारान्मणीनुत्तमकुण्डलानि केयूरवर्य्याण्यथ नूपुराणि।
एवं विधान्याभरणानि यत्र स्वर्गानुरूपाणि फलन्ति वृक्षाः ॥

अर्थात् जहां वृक्ष स्वर्ग के योग्य मुक्ताहार, रत्न एवं उत्तम कुण्डल, सुन्दर

अंगद (बाजूबन्द), नूपुर (पायजेब) और ऐसे ही अनेक प्रकार के आभूषणों को फलित करते हैं। अर्थात् देते हैं।

इसी प्रकार अभिज्ञान शाकुन्तल के चौथे अंक के चतुर्थ श्लोक में कालिदास ने लिखा है कि—

क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डुतरुणा माङ्गल्यमाविष्कृत,
निष्ठ्यूतश्चरणोपभोग-सुलभः लाक्षारसः केनचित् ।
अन्येभ्यो वन-देवता-करतलैरापर्वभागोत्थितैः,
दत्तान्याभरणानि तत्किसलयभेद-प्रतिद्वन्दिभिः ।।

प्रकृति-चित्रण—साहित्य क्षेत्र में कालिदास को प्रकृति का सर्वश्रेष्ठ महाकवि कहा जाता है। कालिदास की यह एक अपनी विशेषता है कि वे अन्तर्जगत् की रमणीयता को बाह्य जगत् में अवलोकन करते हुए दोनों का न्वित रूप चित्रण करने में पूर्ण सतर्क एवं समर्थ महाकवि हैं। कालिदास की मान्यता है कि प्रकृति के समस्त दृश्य चेतन हैं जिनको साधारण समाज जड़ समझता है, उनमें भी चेतनता, और संवेदनानुभव की क्षमता होती है। इसका उदाहरण शाकुन्तल में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि जिस समय शकुन्तला पतिगृह जाने को उद्यत होती है तो उसको सजाने के लिए वृक्षों ने आभूषण एवं रेशमी वस्त्रों को दिया और शकुन्तला भी नवमालिका आदि लताओं के प्रति सखी जैसा प्रेम प्रदर्शित करती है। आश्रम के वृक्ष भी शकुन्तला के विरह में रोते हुए चित्रित किये गये हैं। इसके अतिरिक्त महर्षि काश्यप ने शकुन्तला के लिये मंगल कामना की प्रार्थना मार्ग आदि से की है। ऋतु संहार में पीले पत्तों को आंसू के रूप में गिरते हुए वर्णन किया गया है। प्रकृति की इस चेतनता अनुभव एवं वर्णन कालिदास से पहले अश्वघोष को ही हुई, उन्होंने सौन्दरानन्द नामक महाकाव्य में सुन्दरी के विरह जन्य दुःख से राजमहलों को भी रोते हुए वर्णन किया है। परन्तु अश्वघोष की रचना में ऐसे वर्णन अत्यल्प एवं अविकसित हैं। कालिदास की कृतियों में प्रकृति चेतना के प्रचुर व्यापक एवम् पूर्ण विकसित वर्णन सहज ही पाठकों को तन्मय बनाने में सवथा समर्थ हैं।

चरित्र-चित्रण—आदि-काव्य वाल्मीकीय-रामायण से लेकर अद्यावधि काव्यों में चरित्र-चित्रण की परम्परा दृष्टिगोचर होती है। अश्वघोष ने भी इस चरित्र-चित्रण की प्रथा को अपनी रचनाओं में वर्णन किया है। उदाहरणार्थ उनके दोनों काव्यों को लिया जा सकता है। बुद्धचरितम् में जिस समय सिद्धार्थ राजमहल से निकलकर रथ पर सवार होकर राजमार्ग में वृद्ध पुरुष को देखता और उसके सम्बन्ध में सारथि से पूछता है, कि यह कौन पुरुष है, क्या यही दशा सबकी होती है, इसी प्रकार मृतक पुरुष को देखकर पूछता है। इस प्रकार अश्वघोष ने बुद्ध के चरित्र को ऐसा आकर्षक और पूज्य चित्रण किया है, जो एक महापुरुष के लिए सर्वथा उचित एवम् आवश्यक ही होता है।

कालिदास भी इसी प्रकार चरित्र-चित्रण में सतर्क और सावधान प्रतीत होते हैं। कुमारसंभव में जिस समय पार्वती को यह ज्ञात होता है, यही भगवान् शकर हैं तो उस समय पार्वती के चरित्र की जो झांकी कालिदास ने चित्रित की है, वह अद्वितीय है, उदाहरणार्थ निम्न श्लोक देखिये—

मार्गाचल-व्यतिकराकुलितेवसिन्धुः।

शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ॥

इसके अतिरिक्त कालिदास ने भारतीय आदर्श नारी का चरित्र-चित्रित करते हुए लिखा है कि—

साहं तपः सूर्यनिविष्टदृष्टिरूर्ध्वं प्रसूतेश्चरितुं यतिष्ये।

भूयो यथा मे जननान्तरेऽपि त्वमेव भर्ता न च विप्रयोगः॥

ऐसा पवित्र आदर्श भारतीय नारी के चरित्र के अतिरिक्त किसी अन्य देश की नारी में मिल सकता है अर्थात कहीं नहीं। इसीलिये कालिदास और अश्वघोष दोनों की रचनाओं में भारतीय आदर्श नारी, भारतीय आदर्श पुरुष, भारतीय आदर्श शासक एवम् आदर्श मित्र आदि के चरित्र चित्रणों की उत्कृष्ट सफलता काव्य जगत को आलोकित कर रही है। यद्यपि अश्वघोष के चरित्र चित्रण दार्शनिकता से ओतप्रोत हैं क्योंकि वे स्वयं महादार्शनिक विद्वान् थे तथापि अश्वघोष ने जो चरित्र चित्रण में वैदुष्य प्रकटित किया है, उसका उत्तरवर्ती

साहित्य ऋणी है। पूर्णरूपेण न सही, तो आंशिक रूप में अवश्य ऋणी है। अश्वघोष के चरित्र चित्रणों में स्थिरता दृष्टिगोचर होती है। इसका कारण यह था कि अश्वघोष का समय चरित्र चित्रण का प्रारम्भिक युग था। इसीलिये स्थिरता भी अद्वितीय मानी जाती है। कालिदास के चित्रणों में यह स्थिरता विकसित होकर चपलता को प्राप्त होकर भी स्थिरता के रूप में प्रतीत होती है। यह कालिदास की चरित्र चित्रण सम्बन्धी अद्वितीयता है। कालिदास की काव्य-कला की श्रेष्ठता के सम्बन्ध में किसी को यत्-किञ्चित् सन्देह करने का कोई अवसर ही नहीं है। अश्वघोष ने दार्शनिक होते हुए भी काव्य साधना में अपूर्व सफलता प्राप्त की, इसमें भी कोई सन्देह नहीं है। अतः चरित्र चित्रण की दृष्टि से दोनों आदर्श चरित्र के संस्थापक एवं सफल महाकवि हैं।

अलंकार योजना—

जब हम दोनों कवियों की काव्य-कला की समीक्षा अलंकार योजना की दृष्टि से करते हैं तो निःसन्देह कालिदास को श्रेष्ठ अनुभव करते हैं और विशेष रूप से उपमा अलंकार के क्षेत्र में तो कालिदास की समता करने वाला कवि न भूतो न भविष्यति की उक्ति चरितार्थ होती है। इसीलिये कालिदास के विषय में विद्वान् समीक्षकों ने कहा है कि—'उपमा कालिदासस्य" अर्थात् कालिदास उपमा के क्षेत्र में अद्वितीय महाकवि हैं। उदाहरणार्थ रघुवंश का प्रथम श्लोक दर्शनीय है—

वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थ-प्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ॥

अपि च—

विधेः सायन्तनस्यान्ते स ददर्श तपो निधिम्।
अन्वासितमरून्धत्या स्वाहयेव हविर्भुजम्॥

अपि च—

वन्यवृत्तिरिमां शश्वदात्मानुगमनेमगाम्।
विद्यामभ्यसनेनैव प्रसादयितुमर्हसि॥

अपि च—

ततः लक्ष्मणशत्रुघ्नौ सुमित्रा सुषुवे यमौ ।

सम्यगाराधिता विद्याप्रबोधविनयाविव ॥

ऐसे ही अनेक पग पग पर कालिदास की रचनामें उपमा अलंकार के उत्कृष्ट एवं सफल अद्वितीय उदाहरण प्राप्त होते हैं ।

इन्दुमती स्वयम्बर में "संचारिणी दीपशिखेव" इत्यादि श्लोक को देखकर कालिदास को "दीपशिखा" की उपाधि से विद्वान् समीक्षकों ने बड़े आदर के साथ सम्मानित एवं विभूषित किया है ।

परन्तु अश्वघोष भी उपमा अलंकार के सफल महाकवि हैं । यद्यपि अश्वघोष को उपमा अलंकार के क्षेत्र में कालिदास से श्रेष्ठ नहीं माना जा सकता है तथापि अश्वघोष कालिदास के समान ही उपमा अलंकार के वर्णन में सफल महाकवि हैं । अश्वघोष के बुद्धचरित और सौन्दरानन्द में उपमा अलंकार के उत्कृष्ट उदाहरणों को यथास्थान देखा जा सकता है । इसके अतिरिक्त अश्वघोष की रचनाओं में शास्त्रीय एवम् ऐतिहासिक उपमाओं का प्रचुर प्रयोग दृष्टिगोचर होता है । उदाहरणार्थ निम्न श्लोक देखिये—

तं गौरवं बुद्धगतं चकर्ष भार्यानुरागः पुनराचकर्ष ।

सोऽनिश्चयान्नापि ययौ न तस्थौ तरंस्तरंगेष्विव राजहंसः ॥

इसी प्रकार जब नन्द के द्वार से बुद्ध भिक्षा बिना प्राप्त किये हुए लौट आते हैं तो उस नन्द की क्या दशा हुई ? उस दशा का वर्णन अश्वघोष ने उपमा के माध्यम से किया है कि—

चचाल चित्ताभरणाम्बरस्तथा ।

कल्पद्रुमोधूत इवानिलेन ॥

अपि च—

सा हास हंसा नयनद्विरेफा पीनस्तनात्युन्नतिपङ्कोषा: ।

भूयो बभाषे स्वकुलोदितेन स्त्री पद्मिनी नन्ददिवाकरेण ॥

इस प्रकार विवेचन करने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि अश्वघोष उपमा अलंकार के वर्णन में कालिदास से श्रेष्ठ नहीं तो कम भी नहीं थे ।

व्याकरण सम्बन्धी अन्तर—

कालिदास और अश्वघोष की रचनाओं में व्याकरण सम्बन्धी पर्याप्त अन्तर प्राप्त होता है। कालिदास के काव्यों में अवैयाकरण शब्दों का प्रयोग अत्यल्प एवं नगण्य है, जिनको विद्वानों ने 'आर्ष" प्रयोग मानकर छोड़ दिया है। इसके विपरीत अश्वघोष की रचनाओं में अपाणिनीय शब्दों और क्रियाओं का अधिक प्रयोग देखा जाता है। "अस्ति" का प्रयोग अश्वघोष ने तीनों कालों भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान काल के लिये भी किया है और पा धातु का प्रयोग वि और उत् उपसर्गों को बिना लगाये हुए भी किया है। अतः पाणिनीय व्याकरण की दृष्टि से कालिदास का वैदुष्य सराहनीय एवं आधुनिक है। अश्वघोष के व्याकरण सम्बन्धी परिज्ञान में कोई न्यूनता नहीं दिखाई पड़ती है अपितु प्राचीनता प्रतिबिम्बित होती है।

भाषा एवं शैली सम्बन्धी विवेचन—

कालिदास की भाषा सरस प्रसाद गुणयुक्त एवं वैदर्भी रीति पर पूर्ण एकाधिकार रखती है। परन्तु अश्वघोष को तो वैदर्भी रीति का प्रवर्तक माना जाता है। अश्वघोष की रचनाओं में समासयुक्त पदों का अल्प प्रयोग किया गया है और वे भी दीर्घकाय समास रहित पद ही काव्यों में प्रयुक्त हुए हैं। अश्वघोष दार्शनिक प्रकाण्ड विद्वान् होते हुए भी उन्होंने अपने काव्यों का प्रणयन इतनी सरल भाषा में किया है, जिसे देखकर आश्चर्य होता है कि क्या कोई अन्य दार्शनिक विद्वान् दर्शन सम्बन्धी नीरस विषयों को इस प्रकार सरल और सरस भाषा में अश्वघोष के अतिरिक्त वर्णन कर सकता है अर्थात् कोई नहीं। कालिदास के काव्यों में जो सरलता और सरसता दृष्टिगोचर होती है, उस पर अश्वघोष और बालमीकि की काव्य कला का प्रभाव माना जाता है। यह दूसरी बात है कि कालिदास की काव्य-कला पूर्ण विकसित, सरस एवं सार्वभौमिक रमणीयता से ओतप्रोत है। कालिदास ने चाहे काव्य, महाकाव्य, खण्डकाव्य, नाटक, गीतिकाव्य तथा नीतिकाव्य लिखा हो उनमें सर्वत्र सफल महाकाव्य जैसी सरस रचना का समान रूप से दर्शन किया जाता है। इसीलिये कालिदास को काव्य-कला का गुरु और सार्वभौमिक महाकवि कहा जाता है जो सर्वथा

सत्य एवं समीचीन है। इसी प्रकार अश्वघोष ने भी जिस किसी वर्णन को अपना वर्ण्य विषय बनाया चाहे वह वर्णन दार्शनिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन से सम्बन्धित हो, चाहे शृंगार वर्णन से सम्बन्धित हो, समान रूप से उनमें सरलता और सरसता तथा सफलता का पूर्ण दर्शन प्राप्त होता है। अतः दोनों उत्कृष्ट महाकवि थे।

अश्वघोष और कालिदास की कृतियों में कहीं-कहीं पर्याप्त समानता दृष्टिगोचर होती है। उदाहरणार्थ निम्न उद्धरण दर्शनीय है—

अश्वघोष कृत—

आदित्यपूर्वं विपुलं कुलं ते नवं वयो दीप्तमिदं वपुश्च।

कालिदास कृत—

एकातपत्रं जगतः प्रभुत्वं नवं वयः कान्तमिदं वपुश्च।

अश्वघोष कृत—

मोघं श्रमं नार्हसि मार कर्तुम्।

कालिदास कृत—

अल महीपाल तव श्रमेण प्रयुक्तमप्यस्त्रमितो वृथा स्यात्।

इस प्रकार अश्वघोष की काव्य-कला की समानता कालिदास की कला में दृष्टिगोचर होती है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि कालिदास की काव्य-कला पर अश्वघोष की काव्य कला का प्रभाव अवश्य पड़ा। यह दूसरी बात है कि इस संकेतात्मक अश्वघोष की काव्य-कला के प्रभाव को कालिदास ने विस्तृत. विकसित एवं सार्वभौमिक वर्णन की सरसता प्रदान करके कविकुल गुरु की उपाधि अर्जित की है। परन्तु अश्वघोष को काव्य-कला को कालिदास की काव्य-कला से न्यून नहीं कहा जा सकता है। अन्तर केवल समय अर्थात् प्राचीनता और अर्वाचीनता का है। अश्वघोष की अपेक्षा कालिदास की काव्य-कला अर्वाचीन और विकसित है।

भवदीयः

त्रिवेणीदत्त त्रिपाठी शास्त्री

"चञ्चरीक"

व्याकरणाचार्य,

कपरहा, (खीरी लखीमपुर)

परिशिष्ट

बुद्धचरितस्य तृतीयसर्गान्तर्गतछन्दोविवेचनम्

सर्ग के प्रथम श्लोक से बासठ श्लोक तक उपजाति छन्द है, जिसका लक्षण निम्न प्रकार है--

अनन्तरोदिरित-लक्ष्मभाजौ, पादौ यदीयावुपजातयस्ताः ।

इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु, वदन्ति जातिष्विदमेव नाम ।

अर्थ—प्रत्येक श्लोक में चार चरण अथवा चार पाद होते हैं जिसमें एक चरण इन्द्रवज्रा और दूसरा चरण उपेन्द्रवज्रा अथवा एक चरण उपेन्द्रवज्रा और दूसरा चरण इन्द्रवज्रा का हो तो उसे उपजाति छन्द कहते हैं। इसी प्रकार जगती आदि छन्द के इन्द्रवंशा और उपेन्द्रबंशा के संयोग से उपजाति छन्द बनता है ऐसा समझना चाहिये । यहां उपजाति के अन्य भेदों के उदाहरणों की आवश्यकता नहीं है । अतः उपजानि के प्रथम भेद के उदाहरण बुद्धचरित तृतीय सर्ग के १ से ६२ तक के सभी श्लोक उदाहरण हैं ।

६३ वें श्लोक में वंशस्थ छन्द है, वंशस्थ का लक्षण निम्न प्रकार है—

"जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ ।"

अर्थात् जिस श्लोक के प्रत्येक चरण में प्रथम एक जगण और एक तगण तथा फिर एक जगण और एक रगण हो, उसे वंशस्थ कहते हैं ।

उदाहरणार्थ बुद्धचरित तृतीय सर्ग का ६३ वां श्लोक देखिये । इसी सर्ग के अन्त के दो श्लोकों में "अतिरुचिरा" छन्द है । अतिरुचिरा छन्द का लक्षण निम्न प्रकार है—

"चतुर्ग्रहैरतिरुचिरा जभसजगाः ।"

जिस श्लोक के प्रत्येक चरण में जगण, भगण, सगण, जगण और एक वर्ण गुरु हो, उसे 'अतिरुचिरा' छन्द कहते हैं । उदाहरणार्थ बुद्धचरित तृतीय सर्ग के ६४–६५ श्लोक देखिये ।

बुद्धचरितस्य तृतीय—सर्गान्तर्गत—सूक्तयः

१. गच्छेति चाज्ञापयति स्म वाचा स्नेहान्न चैनं मनसा मुमोच ॥७॥

२. मार्गं प्रपेदे सदृशानुयात्रश्चन्द्रः सनक्षत्र इवान्तरिक्षम् ॥६॥

३. धन्यास्य भार्येति शनैरवोचञ्शुद्धैर्मनोभिः खलु नान्यभावात् ॥२३॥

४ त्यक्त्वा श्रियं धर्ममुपैष्यतीति तस्मिन् हि ता गौरवमेव चक्रुः ॥२४॥

५. सरत्यमप्यर्थमदोषदर्शी तैरेव देवैः कृतबुद्धिमोहः ॥२६॥

६. नाशः स्मृतीनां रिपुरिन्द्रियाणामेषा जरा नाम ययैष भग्नः ॥३०॥

७. एवं जरां रूपविनाशयित्रीं जानाति चैवेच्छति चैव लोकः ॥३३॥

८. श्रुत्वा जरां संविविजे महात्मा महाशनेर्घोषमिवान्तिके गौः ॥३४॥

९. न चैव संवेगमुपैति लोकः प्रत्यक्षतोऽपीदृशमीक्षमाणः ॥३६॥

१०. उद्यानभूमौ हि कुतो रतिर्मे जराभये चेतसि वर्तमाने ॥३७॥

११ रोगाभिधानः सुमहाननर्थः शक्तोऽपि येनैष कृतोऽस्वतन्त्रः ॥४२॥

१२. एवं हि रोगैः परिपीड्यमानो रुजातुरो हर्षमुपैति लोकः ॥४४॥

१३ विस्तीर्णमज्ञानमहो नराणां हसन्ति ये रोगभयैरमुक्ताः ॥४६॥

१४. अवाच्यमप्यर्थमिमं नियन्ता प्रव्याजहारार्थवदीश्वराय ॥ ५६॥

१५. किं केवलोऽस्यैव जनस्य धर्मः सर्वप्रजानामयमीदृशोऽन्तः ॥५८॥

१६. हीनस्य मध्यस्य महात्मनो वा सर्वस्य लोके नियतो विनाशः ॥५६॥

१७. मनांसि शङ्के कठिनानि नृणां स्वस्थास्तथा ह्यध्वनि वर्तमानाः ॥६१॥

१८. जानन्विनाशं कथमार्तिकाले सचेतनः स्यादिह हि प्रमत्तः ॥६२॥

बुद्धचरितम्

अथ तृतीय-सर्गः

(संवेगोत्पत्ति)

ततः कदाचिन्मृदुशाद्वलानि पुंस्कोकिलोन्नादितपादपानि ।
शुश्राव पद्माकरमण्डितानि गीतैर्निबद्धानि स काननानि ॥१॥

(टीकाकर्तुः मङ्गलाचरणम्—)

(स्मृत्वा शङ्करपादपद्मयुगलं नत्वा शिवां शारदां,
ब्रह्मानन्दगुरुं प्रणम्य शिरसा स्वर्लोकयातं द्विजम् ।
प्रख्यातं भृशमश्वघोषरचितं श्री बुद्धदेवस्य यद्,
वृत्तं यस्य च नाम बुद्धचरितं व्याख्यायते तन्मया ॥)

अन्वय—ततः कदाचित् सः मृदुशाद्वलानि पुंस्कोकिलोन्नादितपादपानि पद्माकरमण्डितानि गीतैः निबद्धानि काननानि शुश्राव ।

संस्कृत व्याख्या—ततः विषयसुखपरिचयानन्तरं, पुत्रजन्मानन्तरं, कदाचित् एकदा, सः बुद्धः, मृदुशाद्वलानि मृदूनि च शाद्वलानि मृदुशाद्वलानि मृदुहरित-तृणपूर्णानि, पुंस्कोकिलोन्नादितपादपानि पुंस्कोकिलैः उन्नादिताः पादपाः येषु तानि पुंस्कोकिलशब्दपूर्णतरूणि पद्माकरमण्डितानि = पद्माकरैः मण्डितानि = पद्माकर-मण्डितानि जलाशय-सुशोभितानि, गीतैः मनोज्ञगायनैः, निबद्धानि व्याप्तानि, काननानि नगरोपवनानि, शुश्राव अशृणोत् । भगवान् बुद्धः, उपवनानां रमणीयताम् अशृणोदित्यर्थः ।

हिन्दी अर्थ—सांसारिक विषय सुखों से परिचय प्राप्त करने के बाद एक दिन उस भगवान् बुद्ध देवने संगीत से परिपूर्ण (नगरके) काननों (उपवनों) के विषय में सुना (कि ये वन) कोमल और हरी घाससे परिपूर्ण हैं । इन उपवनों के वृक्ष कोयलों के (मधुर) शब्दों से गुञ्जित हैं अर्थात् जिनके वृक्षों पर कोयल

का मधुर शब्द होता रहता है तथा जो कानन (उपवन) कमलों से परिपूर्ण जलाशयों से सुशोभित हैं। ऐसी अनुपम उपवनों की रमणीयता के विषय में बुद्ध ने सुना।

समास—मृदुशाद्वलानि = मृदूनि च शाद्वलानि येषु तानि (बहुब्रीहि समास); पुंस्कोकिलोन्नादितपादपानि पुंस्कोकिलैः उन्नादिताः पादपाः येषु तानि = पुंस्कोकिलोन्नादितपादपानि (बहुब्रीहि समास), पद्माकरमण्डितानि-पद्मानाम् आकराः तैः मण्डितानि पद्माकरमण्डितानि (तृतीय तत्पुरुष)।

टिप्पणी—**ततः** = इसके बाद, **कदाचित्** = कभी (एक बार), **मृदुशाद्वलानि** = कोमल और हरी घास से परिपूर्ण, **पुंस्कोकिलोन्नादितपादपानि** = कोयलों के शब्दों से युक्त वृक्षों वाले, **पद्माकरमण्डितानि** = जलाशयों से सुशोभित. **गीतैः** = गानों से, **निबद्धानि** = परिपूर्ण, **काननानि** = वनों को (उपवनों के विषय में), **शुश्राव** = सुना। √श्रु धातु से लिट् लकार के प्रथम पुरुष एकवचन में शुश्राव बनता है।

श्रुत्वा ततः स्त्रीजनवल्लभानां मनोज्ञभावं पुरकाननानाम्
बहिःप्रयाणाय चकार बुद्धिमन्तर्गृहे नाग इवावरुद्धः ॥२॥

अन्वय—ततः स्त्रीजनवल्लभानां पुरकाननां मनोज्ञभावं श्रुत्वा अन्तर्गृहे अवरुद्धः नाग इव बहिः प्रयाणाय बुद्धि चकार।

संस्कृत व्याख्या—ततः काननानां रमणीयतायाः श्रवणानन्तरम्, स्त्रीजनवल्लभानां = स्त्रीजनाय वल्लभानाम् कामिनीजनप्रियाणां, पुरकाननानां पुरस्यकाननानाम् नगरोपवनानां, मनोज्ञभावं रमणीयतां, श्रुत्वा आकर्ण्य, अन्तर्गृहे गृहाभ्यन्तरे, अवरुद्धः निबद्धः, नाग इव गज इव, बहिः, प्रयाणाय गन्तुम्, बुद्धि मतिं, चकार अकरोत्। अन्तःपुरात (उपवनानि अवलोकयितुं) बहिः गमनार्थं व्यचारयत्। इति भावः। अत्रोपमालङ्कारः।

हिन्दी अर्थ—उपवनों की रमणीयता के विषय में सुनने के पश्चात् रमणियों के प्रिय अर्थात् रमणी जनों को प्रिय लगने वाले नगर के उपवनों की रमणीयता को सुनकर भवन के अन्दर बंधे हुए हाथी के समान उस बुद्धदेव ने बाहर जाने का विचार किया अर्थात् घर में बंधे हुए हाथी के समान अपने को

बंधा हुआ अनुभव करके अन्तःपुर से बाहर उपवनों में जाने का विचार किया। यहां उपमा अलङ्कार है। हाथी उपमान और बुद्ध उपमेय घर में बंधा होना साधारण धर्म और इव उपमावाचक शब्द है। इस प्रकार यहां पूर्णोपमा अलङ्कार है।

समास—स्त्रीजनवल्लभानां = स्त्रीणां जनः (समूहः) तस्मै वल्लभानां (चतुर्थी तत्पुरुष), पुरः यानि काननानि पुरकानाननि तेषां (षष्ठी तत्पुरुष), मनोज्ञभावं = मनोज्ञस्य भावः मनोज्ञभावः तं = मनोज्ञभावम् (षष्ठी तत्पुरुष)।

टिप्पणी—**स्त्रीजनवल्लभानां** = स्त्री जाति के लिये प्रिय, **पुरकाननानां** = नगर के उपवनों की, **मनोज्ञभावं** = मनोहरता को, **श्रुत्वा** = सुनकर √श्रु + क्त्वा → त्वा = श्रुत्वा, **अन्तर्गृहे** = घर के अन्दर, **अवरुद्धः** = रुके हुए, बंधे हुए, अव + रुह् + क्त → त = **अवरुद्धः**, नाग इव हाथी के समान, बहिः = बाहर, **प्रयाणाय** = जाने के लिये, प्र + या + ल्युट् → यु → अन + **प्रयाणाय** चतुर्थी एकवचन, बुद्धि = बुद्धि को, **चकार** = किया, √कृ धातु लिट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन में **चकार** बनता है।

ततो नृपस्तस्य निशम्य भाव पुत्राभिधानस्य मनोरथस्य।
स्नेहस्य लक्ष्म्या वयसश्च योग्यामाज्ञापयामास विहारयात्राम् ।।३।।

अन्वय—ततः पुत्राभिधानस्य तस्य मनोरथस्य भाव निशम्य नृपः स्नेहस्य लक्ष्म्याः च वयसः योग्यां विहारयात्राम् आज्ञापयामास।

संस्कृत व्याख्या—ततः तदनन्तरं, पुत्राभिधानस्य पुत्रनामकस्य, तस्य बुद्धस्य, मनोरथस्य मनोऽभिलाषायाः, भावम् अभिप्रायम्, आशयं, निशम्य श्रुत्वा, नृपः राजा, स्नेहस्य प्रेम्णः, अनुरागस्य, लक्ष्म्याः सम्पत्तेः, च, वयसः अवस्थायाः, तारुण्यस्य, योग्याम् अनुरूपां, विहारयात्राम् उपवनादिषु भ्रमणयात्राम्, भ्रमणार्थमित्यर्थः। आज्ञापयामास आज्ञापयत्, आदिदेश, अनुमतिं ददौ—इत्यर्थः।

हिन्दी अर्थ—बुद्ध के बाहर भ्रमणार्थ यात्रा का निर्णय करने के बाद पुत्र ही है नाम जिसका उस पुत्र के बाहर उपवनों में भ्रमण करने की इच्छा को सुनकर राजा शुद्धोदन ने पुत्रप्रेम, राजसम्पत्ति और युवावस्था के योग्य विहार-

यात्रा की आज्ञा दे दी अर्थात् उपवनों में भ्रमण करने के लिये बाहर जाने की आज्ञा प्रदान कर दी, अनुमति दे दी।

समास—पुत्राभिधानस्य = पुत्र एव अभिधानं (नाम) यस्य सः तस्य = पुत्राभिधानस्य (बहुव्रीहि समास), विहारयात्राम् = विहारस्य यात्राम् (प्रस्थानं) = विहारयात्राम् (षष्ठी तत्पुरुष)।

टिप्पणी—ततः = इसके बाद, बुद्ध के द्वारा उपवन में जाने का निर्णय करने के बाद, **नृपः** = शुद्धोदन नामक राजा ने, बुद्ध के पिता ने, **पुत्राभिधानस्य** = पुत्र ही है नाम जिसका उसके, **मनोरथस्य** = इच्छा के, **स्नेहस्य** = प्रेम के, **लक्ष्म्याः** = सम्पत्ति के, **च** = और, **वयसः** = युवावस्था के, **योग्याम्** = अनुरूप, **विहारयात्राम्** = विहार करने के लिये बहिर्गमन की, **आज्ञापयामास** = आज्ञा दे दी। **निशम्य** = नि + शम् + क्त्वा + ल्यप् → य = **निशम्य**, भावं = √भू + घञ् → अ = भाव + अम् = **भावम्** द्वितीया एकवचन, योग्याम् = √युज् + यत् → य = योग्य—स्त्रीलिंग के अर्थ में टाप् → आ = योग्या + अम् = **योग्याम्** द्वितीया एकवचन, आज्ञापयामास आङ् उपसर्ग ण्यन्त ज्ञापि धातु से लिट् लकार के प्रथम पुरुष एकवचन में आज्ञापयामास बनता है।

निवर्तयामास च राजमार्गे सम्पातमार्तस्य पृथग्जनस्य।
मा भूत्कुमारः सुकुमारचित्तः संविग्नचेता इति मन्यमानः ॥४॥

अन्वय—सुकुमारचित्तः कुमारः संविग्नचेता माभूत् इति मन्यमानः (नृपः) राजमार्गे आर्त्तस्य जनस्य पृथक् संपातम् निवर्त्तयामास।

संस्कृत व्याख्या—सुकुमारचित्तः = सुकुमारं चित्तं यस्य सः = सुकुमारचित्तः कोमलहृदयः, कुमारः राजकुमारः, बुद्धः, संविग्नचेताः संविग्नं चेतः यस्य सः = संविग्नचेता विरक्तहृदयः, माभूत् न स्यात्, **इति** इत्थं, मन्यमानः मनसा भावयन्, नृपः बुद्धपिता, राजमार्गे राजपथि, **आर्त्तस्य** रोगग्रस्तस्य, जनस्य व्यक्तेः, पृथक् राजमार्गादन्यत्र, सम्पातं यातायातं, **निवर्त्तयामास** निषेधयामास।

हिन्दी अर्थ—कोमल हृदय वाले इस राजकुमार (बुद्ध) के हृदय में कहीं वैराग्य (सांसारिक विषयों से विरक्ति) न उत्पन्न हो जाय, ऐसा मानते हुए

राजा शुद्धोदन ने राजमार्ग पर दु:खी एवं रोगी व्यक्तियों का यातायात रोक दिया। इसमे बुद्ध के भावी वैराग्य ग्रहण की अभिव्यञ्जना हो रही है।

समास—सुकुमारचित्त:—सुकुमारं (कोमलं) चित्तं यस्य सः=सुकुमारचित्तः (बहुब्रीहि समास), संविग्नचेताः=संविग्नं चेतः यस्य सः=संविग्नचेताः (बहुब्रीहि समास), राजमार्गे=राज्ञाम् मार्गे=राजमार्गे (षष्ठी तत्पुरुष)।

टिप्पणी—सुकुमारचित्तः=कोमल हृदय वाले, **कुमारः**=राजकुमार, बुद्ध, **संविग्नचेताः**=विरक्त हृदय, **माभूत्**=न हो जायें, **इति**=यह, **मन्यमानः**=मानते हुए, दिवादिगणी √मन् धातु से=मन्य+शानच्→आन मुक् का आगम म् शेष=मन्यमानः प्रथमा एकवचन, **राजमार्गे**=राजपथ, सड़क पर, **आर्त्तस्य जनस्य**=दु:खी पीड़ितों रोगियों आदि का, **पृथक्**=दूसरी ओर को, **सम्पातं**=जाना आना, **निवर्तयामास**=लौटा दिया अर्थात् राजमार्ग पर रोगियों का आना जाना रोक दिया।

प्रत्यङ्गहीनान्विकलेन्द्रियांश्च जीर्णातुरादीन् कृपणांश्च दिक्षु।
ततः समुत्सार्य परेण साम्ना शोभां परां राजपथस्य चक्रुः॥५॥

अन्वय—ततः प्रत्यङ्गहीनान्, विकलेन्द्रियान्, जीर्णातुरादीन् च कृपणान् दिक्षु परेण साम्ना समुत्सार्य राजपथस्य परां शोभां चक्रुः।

संस्कृत व्याख्या—ततः राजपथात् आर्त्तजननिषेधानन्तरं, राजपुरुषाः, प्रत्यंगहीनान् हस्तपादाद्यङ्गविरहितान्, विकलेन्द्रियान् इन्द्रियघातदोषयुक्तान्, जीर्णातुरादीन् वृद्धरोगादियुक्तान्, जनान्, कृपणांश्च दीनान् च दिक्षु अन्यत्र सर्वासु अपि आशासु, परेण अत्यधिकेन, साम्ना सामवचनेन, शान्त्या, च, समुत्सार्य पृथक् कृत्वा, राजपथस्य राजमार्गस्य, परां भूयसीं, शोभां, चक्रुः अकुर्वन्। राजमार्गात्-अंगहीनान् मूकान्धवधिरखञ्जादीन् वृद्धान् रोगग्रस्तान् च अन्यत्र संप्रेष्य परमया शान्त्या राजमार्गात् पृथक् कृत्य राजमार्गं सज्जीकृतवन्तः इति भावः।

हिन्दी अर्थ—इसके बाद अंगहीनों, विकल इन्द्रियों वालों वृद्ध रोगी आदि लोगों को तथा दीनों-गरीबों बेचारों को (राजमार्ग से दूसरी ओर) सभी दिशाओं को ओर परम शान्ति से हटाकर राजमार्ग की परम शोभा की अर्थात् राजमार्ग

को बन्दनवार, पुष्प मालाओं, झालरों, फाटकों आदि की रचना करके सुसज्जित किया।

समास—प्रत्यङ्गहीनान् = अङ्गं पुअङ्गेषु इति प्रत्यङ्गानि तेभ्यः ये हीनाः प्रत्यङ्गहीनाः तान् = प्रत्यङ्गहीनान् (अव्ययीभाव, तत्पुरुष समास) विकलेन्द्रियान् = विकलानि इन्द्रियाणि येषां ते तान् = विकलेन्द्रियान् (बहुव्रीहि समास) जीर्णातुरादीन् = जीर्णाः च आतुरादयः च जीर्णातुरादयः, तान् = जीर्णातुरादीन् (द्वन्द्व समास), राजपथस्य = राज्ञां पथः, तस्य = राजपथस्य (षष्ठी तत्पुरुष समास)।

टिप्पणी—**प्रत्यङ्गहीनान्** = अङ्गों से हीनों को, **विकलेन्द्रियान्** = व्याकुल इन्द्रियों वालों को, **जीर्णातुरादीन्** = वृद्ध और रोगी आदि लोगों को, **कृपणान्** = दीनों, गरीबों, बेचारों को, **दिक्षु** = सभी ओर (राज्यमार्ग को छोडकर अन्य सभी ओर), **परेण** = अत्यन्त, **साम्ना** = शान्ति वचनों के द्वारा, **समुत्सार्य** = हटाकर, सम् + उत् + √सृ + णिच् → इ = समुत्सारि + क्त्वा और क्त्वा के स्थान पर ल्यप् → य (शेष) = **समुत्सार्य**, **राजपथस्य** = राजमार्ग की, **परां** = अत्यन्त, **शोभां** = शोभा, **चक्रुः** = किया, √डुकृञ् धातु से लिट् लकार में, प्रथम पुरुष के बहुवचन में "चक्रुः" बनता है। **साम्ना** = सामन् शब्द से तृतीया एकवचन में "साम्ना" बनता है। इसके रूप साम, सामनी, सामानि इत्यादि होते हैं।

(6) **ततः कृते श्रीमति राजमार्गे श्रीमान्विनीतानुचरः कुमारः।**
प्रासादपृष्ठादवतीर्य काले कृताभ्यनुज्ञो नृपमभ्यगच्छत्॥६॥

अन्वय—ततः राजमार्गे श्रीमति कृते (सति) कृताभ्यनुज्ञः विनीतानुचरः श्रीमान् कुमारः काले प्रासादपृष्ठात् अवतीर्य नृपम् अभ्यगच्छत्।

संस्कृत व्याख्या—ततः तदनन्तरम्, राजमार्गे राजवर्त्मनि, राजपथे, श्रीमति शोभासम्पन्ने, कृते विहिते, सति, कृताभ्यनुज्ञः प्राप्तानुमतिः प्राप्तादेशः, विनीतानुचरः = विनीताः अनुचराः सेवकाः यस्य सः = विनीतानुचरः विनीत-सेवकयुक्तः, सन्, श्रीमान् ऐश्वर्यसम्पन्नः, कुमारः राजकुमारः बुद्धदेवः, काले

समुचितसमये, प्रासादपृष्ठात् राजभवनपृष्ठात्, अवतीर्य अधः समागत्य, नृपम् राजानं स्वपितरम्, अभ्यगच्छत् समीपमाययौ।

हिन्दी अर्थ—इसके बाद राजमार्ग के शोभा युक्त किये जाने पर अर्थात् वन्दनवार, पुष्प मालाओं आदि के द्वारा राजमार्ग के सजाये जाने पर (वहिर्गमन की) आज्ञा प्राप्त किये हुए ऐश्वर्यशाली, नम्र एवं शिष्ट सेवकों से युक्त राजकुमार बुद्धदेव समय पर राजभवन की छत से नीचे उतर कर राजा के पास गये अर्थात् बुद्धदेव बाहर जाने से पूर्व राजभवन से नीचे उतर कर अपने पिता जी के पास गये।

समास—कृताभ्यनुज्ञः = कृता अभ्यनुज्ञा येन सः = कृताभ्यनुज्ञः (बहुव्रीहि समास), विनीतानुचरः = विनीताः अनुचराः यस्य सः = विनीतानुचरः (बहुव्रीहि समास), प्रासादपृष्ठात = प्रासादस्य, पृष्ठात् = प्रासादपृष्ठात (षष्ठी तत्पुरुष समास)।

टिप्पणी—राजमार्गे = राजपथ, सड़क के, श्रीमतिकृते = शोभायुक्त किये जाने पर अर्थात् वन्दनवार झालर पुष्प मालाओं आदि के द्वारा राजमार्ग के सुसज्जित किये जाने पर, कृताभ्यनुज्ञः = आज्ञा प्राप्त किये हुए, विनीतानुचरः = नम्र सेवकों से युक्त, श्रीमान् = शोभा सम्पन्न अथवा लक्ष्मीयुक्त अथवा ऐश्वर्य सम्पन्न, कुमारः = राजकुमार बुद्धदेव, काले = समय पर, प्रासादपृष्ठात् = राजभवन की छत से (नीचे), अवतीर्य = उतर कर, अव + तृ + क्त्वा और क्त्वा को ल्यप् → य = अवतीर्य, नृपम् = राजा के, अभ्यगच्छत् = समीप को गये। नृपम् अभ्यगच्छत् = यहाँ अभि के योग में नृप शब्द से द्वितीया विभक्ति हो गई है, षष्ठी नहीं हुई। विनीत + अनुचरः (दीर्घ सन्धि) पृष्ठात् + अवतीर्य (जश्त्व सन्धि), कृत + अभि + अनुज्ञः (दीर्घ, यण् सन्धि), नृपम् + अभि + अगच्छत् (व्यंजन, यण् सन्धि)।

अथो नरेन्द्रः सुतमागताश्रुः शिरस्युपाघ्राय चिरं निरीक्ष्य।
गच्छेति चाज्ञापयति स्म वाचा स्नेहान्न चैनं मनसा मुमोच ॥७॥

अन्वय—अथ आगताश्रुः शिरसि सुतम् आघ्राय चिरम् (सुतम्) निरीक्ष्य वाचा गच्छ इति आज्ञापयतिस्म स्नेहात् मनसा च एनम् न मुमोच।

संस्कृत व्याख्या—अथ अनन्तरम्, आगताश्रुः आगतानि अश्रूणि यस्य सः—आगताश्रुः अश्रुपूरितनयनः, नरेन्द्रः नराणाम् इन्द्र =नरेन्द्रः राजा, शुद्धोदनः, तत्पिता, शिरसि मस्तके, भाले, उपाघ्राय सुतम् पुत्रम्, आलिङ्ग्य, परिचुम्ब्य, चिरं चिरकालं सुतं समीपागतं पुत्रम्, निरीक्ष्य समवलोक्य, वाचा वाण्या, वाङ्मात्रेण, गच्छ व्रज, इति, आज्ञापयतिस्म आज्ञापयत्, स्नेहात् प्रेम्णः, अनुरागात्, मनसा हृदयेन, च, एनम् उपवनं गन्तुमुद्यतं पुत्रं, न नैव, मुमोच अमुचत्, तत्याज ।

हिन्दी अर्थ—**तब आ गये हैं** (आंखों में) आंसू, जिसके ऐसे उस राजा शुद्धोदन ने शिर में आलिङ्गन करके सूंघ करके और बड़ी देर तक (पुत्र के मुख को) देख करके, समीप आये हुए विहार यात्रा के लिये उद्यत पुत्र (बुद्ध) को वाणी मात्र से जाओ यह आज्ञा (अनुमति) प्रदान की । (परन्तु) प्रेमवश मन से पुत्र को नहीं छोड़ा अर्थात् हृदय से बहिर्गमन की अनुमति नहीं दी । (यहां राजा के पुत्र सम्बन्धी प्रेम की अतिशयिता और विरक्ति की आशंका व्यञ्जित हो रही है कि कहीं बहिर्गमन से कोई ऐसा दृश्य न देख ले जिससे वैराग्य स्वीकार कर राज्य छोड़कर संन्यास न ग्रहण कर ले) ।

समास—आगताश्रुः=आगतानि (उत्पन्नानि), अश्रूणि यस्य सः= आगताश्रुः (बहुव्रीहि समास), नरेन्द्रः=नराणाम्, इन्द्रः=नरेन्द्रः (षष्ठी तत्पुरुष समास) ।

टिप्पणी—**अथ**=इसके बाद, तब, **आगताश्रुः**=(आंखों में) उत्पन्न हो गये हैं आंसू जिसके ऐसे उस, **नरेन्द्रः**=राजा ने, शिरसि=शिर में, मस्तक में, **सुतम्**=पुत्र का, **उपाघ्राय**=आलिंगन करके, सूंघ करके, **उपाघ्राय**=उप+ आ+√घ्रा+क्त्वा और क्त्वा को ल्यप्→य (शेष)=उपाघ्राय, **चिरं**=बड़ी देर तक, **सुतं**=समीप आये हुए बाहर जाने के लिये उद्यत पुत्र को, **निरीक्ष्य**= देख करके, **निरीक्ष्य**=निर्+ईक्ष्+क्त्वा और क्त्वा को ल्यप्→य (शेष)= निरीक्ष्य, **वाचा** =वाणी मात्र से, **गच्छ**=जाओ, √गम् धातु (गच्छ्) से लोट् लकार में मध्यम पुरुष के एकवचन में "**गच्छ**" बनता है । **इति**=यह, **आज्ञापयतिस्म**=आज्ञा दे दी, आङ् उपसर्ग पूर्वक ण्यन्त ज्ञापि धातु से "**स्म**"

के योग में "लट स्मे" सूत्र से भूतकाल के अर्थ में लट् लकार हो गई। अतः लट् लकार में प्रथम पुरुष एकवचन में आज्ञापयति बनता है। स्नेहात्=प्रेमवश, एनम्=पुत्र को, मनसा=हृदय से, न=नहीं, मुमोच=छोड़ा, अलग किया।

8 ततः स जाम्बूनदभाण्डभृद्भिर्युक्तं चतुर्भिर्निभृतैस्तुरङ्गैः। Imp
अक्लीबविद्वच्छुचिरश्मिधारं हिरण्मयं स्यन्दनमारुरोह ॥८॥

अन्वय—ततः सः जाम्बूनदभाण्डभृद्भिः चतुर्भिः निभृतैः तुरंगैः युक्तम् अक्लीबविद्वच्छुचिरश्मिधारं हिरण्मयं स्यन्दनम् आरुरोह।

संस्कृत व्याख्या—ततः पित्राज्ञाप्राप्त्यनन्तरं, सः राजकुमारः बुद्धदेवः, जाम्बूनदभाण्डभृद्भिः=जाम्बूनदस्य स्वर्णस्य भाण्डानि अश्वालङ्करणानि बिभ्रति इति ते तैः चतुर्भिः चतुः संख्याकैः, निभृतैः शान्तैः अतएव शिक्षितैः, तुरंगैः अश्वैः, युक्तं समन्वितम्, (रथम्) अक्लीबविद्वच्छुचिरश्मिधारम्=रश्मीन् धारयतीति रश्मिधारः सारथिः स चासौ अक्लीबः बलवान् च विद्वांश्च यस्य (रथस्य) तत्, हिरण्मयं स्वर्णनिर्मितं, स्यन्दनम् रथम्, आरुरोह आरोहत्। स्वर्णघटितैः अश्वालङ्करणैः सुसज्जितैः विनीतैः चतुर्भिः अश्वैः योजितं कनकमयं रथम् बुद्धः आरुरोह। यत् स्यन्दनम् बलवता, विदुषा पवित्रेण च सारथिना युक्तम् आसीत्।

हिन्दी अर्थ—उसके बाद (पिता की अनुमति प्राप्त करने के बाद) बुद्ध सुवर्ण निर्मित भाण्ड (अश्वालङ्करण) को धारण करने वाले चार शिक्षित घोड़ों से युक्त रथ पर सवार हो गये। जो रथ बलवान्, विद्वान् और पवित्र सारथि से युक्त था अर्थात् स्वर्ण निर्मित अश्वालङ्करणों से सुसज्जित चार विनीत (सीधे) अश्वों से युक्त, बलवान्, विद्वान् और पवित्र सारथि से युक्त रथ पर वह बुद्धदेव सवार हो गये।

समास—जाम्बूनदभाण्डभृद्भिः=जाम्बूनदस्य (सुवर्णस्य) यानि भाण्डानि (अश्वालङ्करणानि तानि बिभ्रतीति जाम्बूनदभाण्डभृतः तैः=जाम्बूनदभाण्डभृद्भिः (द्वितीया तत्पुरुष समास) अक्लीबविद्वच्छुचिरश्मिधारम्=रश्मीन् (प्रग्रहान्)

धारयतीति रश्मिधारः स चासौ अक्लीबः विद्वांश्च शुचिः च यस्य तत् = अक्लीबविद्वच्छुचिरश्मिधारम् ।

टिप्पणी — जाम्बूनदभाण्डभृद्भिः = सोने के बने हुए अश्वालङ्करणों को धारण करने वाले, चतुर्भिः = चार, निभृतैः = शान्त एवं शिक्षित (अश्व शिक्षा से परिचित), तुरङ्गैः = घोड़ों से, अक्लीबविद्वच्छुचिरश्मिधारं अक्लीब = बलवान्, विद्वान् और पवित्र, रश्मिधारं = सारथि से युक्त, हिरण्मय = स्वर्ण निर्मित, हिरण्मयं = हिरण्य + मयट् → मय = हिरण्यमयम्, निभृतैः = नि + भृ + क्त → त = निभृतैः तृतीया विभक्ति बहुवचन । युज् + क्त → त = युक्तम् द्वितीया विभक्ति एकवचन, स्यन्दनम् = रथ पर, आरुरोह = सवार हुए, आरुरोह = आङ् उपसर्ग पूर्वक √रुह् धातु से लिट् लकार के प्रथम पुरुष के एकवचन में "आरुरोह" बनता है । विद्वान् = √विद् + वसु → वस् = विद्वस् शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में "विद्वान्" बनता है ।

(९) ततः प्रकीर्णोज्ज्वलपुष्पजालं विषक्तमाल्यं प्रचलत्पताकम् ।
मार्गं प्रपेदे सदृशानुयात्रश्चन्द्रः स नक्षत्र इवान्तरिक्षम् ॥९॥

अन्वय — ततः सदृशानुयात्रः (सः) सनक्षत्रः चन्द्रः इव अन्तरिक्षम् (प्रपेदे तद्वत्) प्रकीर्णोज्ज्वलपुष्पजालं विषक्तमाल्यं प्रचलत्पताकं मार्गं प्रपेदे ।

संस्कृत व्याख्या — ततः स्यन्दनारोहणानन्तरं, सदृशानुयात्रः = सदृशाः योग्याः, अनुयात्राः सेवकाः यस्य स = सदृशानुयात्रः योग्यसेवकसमन्वितः, (सः बुद्धः) सनक्षत्रः = नक्षत्रैः सह = सनक्षत्रः तारागणसहितः, चन्द्रइव निशाकर इव, अन्तरिक्षम् आकाशम्, प्रकीर्णोज्ज्वलपुष्पजालं = प्रकीर्णानाम् निक्षिप्तानाम्, उज्ज्वलानां श्वेतवर्णानां, पुष्पाणां कुसुमानां, जालं यस्मिन् सः तम् = प्रकीर्णोज्ज्वलपुष्पजालं निपततिशुभ्रकुसुमजालम्, विषक्तमाल्यं = विषक्तानि विशेषेण सक्तानि अवलम्बितानि, माल्यानि पुष्पस्रजः, यस्मिन् सः तम् = विषक्तमाल्यम् अवलम्बितकुसुममालम्, प्रचलत्पताकम् = प्रचलन्त्यः दोधूयमानाः पताकाः ध्वजाः यस्मिन् सः तम् = प्रचलत्पताकम् प्रकम्पितध्वजम्, मार्गं राजपथं, प्रपेदे आययौ, आजगाम । अत्रोपमोलङ्कारः उपमानन्तु—अत्र चन्द्रः उपमेयम् बुद्धः आगमनमेव

(प्रपेदे) साधारणधर्मः, इव, उपमावाचकशब्दोऽस्ति। अतः पूर्णोपमालङ्कारो बोध्यः।

हिन्दी अर्थ—रथ पर सवार होने बाद योग्य सेवकों के सहित वह बुद्धदेव नक्षत्रों सहित चन्द्र के समान अर्थात् जिस प्रकार चन्द्र नक्षत्रों सहित आकाश में आता है उसी प्रकार सेवकों सहित बुद्धदेव बिखरे हुए सफेद फूलों की राशि से परिपूर्ण, (खम्भों आदि में) लटकती हुई मालाओं से युक्त, फहराती हुई पताकाओं से सुशोभित मार्ग में आये। यहां उपमा अलङ्कार है। (उपमान चन्द्र और उपमेय बुद्धदेव, उपमा का साधारण धर्म आये "प्रपेदे" है तथा "इव" उपमावाचक शब्द है। अतः पूर्णोपमा अलङ्कार समझना चाहिये।)

समास—सदृशानुयात्रः = सदृशाः (योग्याः) अनुयात्राः (सेवकाः) यस्य सः = सदृशानुयात्रः (बहुव्रीहि समास) सनक्षत्रः = नक्षत्रैः सह = सनक्षत्रः, (तृतीया तत्पुरुष समास) प्रकीर्णोज्ज्वलपुष्पजालम् = प्रकीर्णानाम् उज्ज्वलानां पुष्पाणां जालानि यस्मिन् सः तम् = प्रकीर्णोज्ज्वलपुष्पजालम् (बहुव्रीहि समास) विषक्तमाल्यम् = विषक्तानि माल्यानि यस्मिन् सः तम् = विषक्तमाल्यम् = (बहुव्रीहि समास) प्रचलपताकम् = प्रचलन्त्यः पताकाः यस्मिन् सः तम् = प्रचलत्पताकम् (बहुव्रीहि समास)

टिप्पणी—**सदृशानुयात्रः** = योग्य सेवकों से युक्त, **सनक्षत्रः** = नक्षत्रों सहित, **प्रकीर्णोज्ज्वल पुष्पजालम्** = बिखरे हुए सफेद पुष्पों के जालों से युक्त, **विषक्तमाल्यम्** = विशेषरूप से सक्त अर्थात् लटकने वाली मालाओं से युक्त, **प्रचलत्पताकम्** = फहराती हुई पताकाओं से युक्त, **प्रपेदे** = आये, **प्रपेदे** = प्र + पद् धातु से लिट् लकार के प्रथम पुरुष एकवचन में आत्मनेपद में प्रपेदे बनता है।

(10) **कौतूहलात्स्फीततरैश्च नेत्रैर्नीलोत्पलाधैरिव कीर्यमाणम्।**
शनैः शनैः राजपथं जगाहे पौरैः समन्तादभिवीक्ष्यमाणः ॥१०॥

अन्वयः—पौरैः समन्तात् अभिवीक्ष्यमाणः कौतूहलात् स्फीततरैः नीलोत्पलार्धैः इव नेत्रैः कीर्यमाणम् राजपथं शनैः शनैः जगाहे।

संस्कृत व्याख्या—पौरैः नगरवासिभिः, समन्तात् सर्वतः, अभिवीक्ष्यमाणः अवलोक्यमानः, कौतूहलात् औत्सुक्यात्, स्फीततरैः अतिप्रसन्नैः, नीलोत्पलार्धैः

इव = नीलानि च उत्पलानि नीलोत्पलानि तेषाम् अर्धैः इव अर्धभागैरिव, नेत्रैः नयनैः कीर्यमाणम् प्रक्षिप्तम्, व्याप्तम्, राजपथं = राज्ञां पथं = राजपथं राजमार्ग, शनैः शनैः मन्दं मन्दं, जगाहे प्राविशत् । अत्रोपमालङ्कारः । नीलोत्पलानाम् अधभागाः उपमानानि सन्ति, नेत्राणि उपमेयानि, इव शब्द स्तूपमावाचक शब्दोऽस्ति । साधारण धर्मस्तु कीर्यमाणशब्दोऽस्ति । अतः पूर्णोपमालङ्कारो बोध्यः ।

हिन्दी अर्थ—नगरवासियों के द्वारा चारों ओर से देखे जाते हुए बुद्धदेव ने कौतूहलवश अत्यन्त प्रसन्न अर्थात् विकसित नीलकमलों के अर्धभाग के समान अर्थात् अध विकसित नील कमलों क समान नेत्रों से व्याप्त राजमार्ग पर धीरे-धीरे प्रवेश किया । यहां उपमा अलंकार है । नीलकमल के अर्धभाग उपमान, नेत्र उपमेय, इव उपमावाचक शब्द, कीर्यमाण उपमावाचक साधारण धर्म है ।

समास—स्फीततरैः = अतिशयेन स्फीताः इति स्फीततराः तैः = स्फीततरैः (तृतीया तत्पुरुष समास) नीलोत्पलार्धैः = नीलानि च उत्पलानि, नीलोत्पलानि तेषाम् अर्धैः = नीलोत्पलार्धैः (तत्पुरुष समास)

टिप्पणी— **पौरैः** = नगरवासियों के द्वारा, **समन्तात्** = चारों ओर, **अभिवीक्ष्यमाणः** = देखा जाता हुआ, **अभिवीक्ष्यमाणः** = अभि + वि + ईक्ष् + यक् → य = अभिवीक्ष्य + शानच् → आन मुक् का आगम "म्" शेष = **अभिवीक्ष्यमान** → ण = **अभिवीक्ष्यमाणः**, **कौतूहलात्** = उत्सुकता से, कुतूहल + अण → अ = **कौतूहलात्** पञ्चमी एकवचन, **स्फीततरैः** = अत्यन्त प्रसन्न अर्थात् पूर्ण विकसित, **नीलोत्पलार्धैः** इव = नीलकमलों के अर्धभाग के समान, **नेत्रैः** = आंखों से, **कीर्यमाणम्**— व्याप्त, बिखरे हुए, **कीर्यमाणम्**—कृ + (कृ विक्षेपे धातु से) यक् → य – कीर्य + शानच् → आन, मुक् का आगम "म्" (शेष) = कीर्यमान—न को ण—कीर्यमाणः कीर्यमाणौ, कीर्यमाणाः, **कीर्यमाणम्** (द्वितीया विभक्ति एकवचन) **राजपथं**— राजमार्ग परं, **शनैः शनैः**— 'धीरे-धीरे, **जगाहे**— प्रवेश किया । गाह् धातु—लिट् लकार के प्रथम पुरुष एकवचन में आत्मनेपद में जगाहे बनता है ।

तं तुष्टुवुः सौम्यगुणेन केचिद्ववन्दिरे दीप्ततया तथान्ये ।
सौमुख्यतस्तु श्रियमस्य केचिद् वैपुल्यमाशंसिषुरायुषश्च ॥११॥

अन्वय—केचित् सौम्यगुणेन तं तुष्टुवुः, तथा अन्ये दीप्ततया ववन्दिरे सौमुख्यतः तु केचित् अस्य श्रियम् आयुषः च वैपुल्यम् आशंसिषुः ।

संस्कृत व्याख्या—केचित् कतिपयाः नागरिकाः, सौम्यगुणेन तस्य सौम्यगुणत्वात्, तं बुद्धदेवं, तुष्टुवुः स्तुतिचक्रुः. तथा, अन्ये अपरे, दीप्ततया = दीप्तेः भावः दीप्तता तया = कान्तिमत्तया, ववन्दिरे प्रणेमुः, सौमुख्यतः अनुकूलाचरणतया, तु, केचित् कतिपयाः जनाः, अस्य बुद्धदेवस्य, श्रियं लक्ष्मीम्, च, आयुषः, वैपुल्यम् प्राचुर्यम्, आधिक्यम्, आशंसिषुः कामयाञ्चक्रिरे ।

हिन्दी अर्थ—कुछ नगरवासियों ने (बुद्ध के) सौम्य गुण के कारण उस बुद्धदेव की स्तुति की, और अन्य कुछ लोगों ने बुद्ध के कान्तिमान् होने के कारण बुद्ध की वन्दना की अर्थात् बुद्धि की कान्ति से प्रभावित एवम् आकर्षित हुए लोगों ने उनको प्रणाम किया । कुछ लोगों ने बुद्ध के अनुकूल आचरणों के कारण उनकी लक्ष्मी और आयु की विपुलता की कामना की, अर्थात् बुद्ध की लक्ष्मी और आयु दोनों दीर्घता प्राप्त करें यह कामना की ।

टिप्पणी—**केचिद्**—कुछ लोगों ने । **सौम्यगुणेन**—सौम्यगुणों के कारण, **तं**—बुद्धदेव की, **तुष्टुवुः**—स्तुति की, तुष्टुवुः √ष्टूञ् स्तुतौ धातु से लिट् लकार के प्रथम पुरुष के बहुवचन में "तुष्टुवुः" बनता है । **अन्ये**—कुछ अन्य लोगों ने, **दीप्ततया**—कान्तिमान् होने के कारण, **ववन्दिरे**—प्रणाम किया, ववन्दिरे—वन्द् धातु से लिट् लकार के प्रथम पुरुष के बहुवचन में "**ववन्दिरे**" बनता है । **सौमुख्यतः**—अनुकूल आचरण होने के कारण । **अस्य**—बुद्ध की, **श्रियं**—लक्ष्मी की, **आयुषः**—आयु की **वैपुल्यम्**—विशालता की, दीर्घता की, **वैपुल्यं**—विपुलस्य भावः—**वैपुल्यं**—विपुल + ष्यञ् → य आदि वृद्धि "यस्येति च" सूत्र के 'अ' का लोप—**वैपुल्यम्** (द्वितीया एकवचन) **आशंसिषुः**—कामना की, **आशंसिषुः**—आङ् उपसर्ग पूर्वक √शंस् धातु से लिट् लकार के प्रथम पुरुष के बहुवचन में 'आशंसिषुः' बनता है ।

निःसृत्य कुब्जाश्च महाकुलेभ्यो व्यूहाश्च कैरातकवामनानां ।
नार्यः कृशेभ्यश्च निवेशनेभ्यो देवानुयानध्वजवत्प्रणेमुः ॥१२॥

अन्वय—महाकुलेभ्यो व्यूहाः च कुब्जा., कैरातकवामनानाम् नार्यः, कृशभ्यः निवेशनेभ्यः च नार्यः निःसृत्य देवानुयानध्वजवत् प्रणेमुः ।

संस्कृत व्याख्या—महाकुलेभ्यः उच्चवंशेभ्यः, व्यूहाः समुदायाः, कुब्जाः, च, कैरातकवामनानाम्—कैरातकाः च वामनाः च तेषां—कैरातकवामनानां वनेचरवामनादीनाम, नार्यः स्त्रियः, कृशेभ्यः साधारणेभ्यः दीनेभ्यः, निवेशनेभ्यः गृहेभ्यः, च, निःसृत्य बहिरागत्य, नार्यः देवानुयानध्वजवत्—देवस्य इन्द्रस्य अनुयानध्वजवत् उत्सवध्वज इव, प्रणेमुः प्राणमन् । अत्रोपमालङ्कारः ।

हिन्दी अर्थ—बड़े-बड़े उच्च वंशों से झुण्डों के झुण्ड, कुबड़े लोग तथा किरात और वामनों की स्त्रियां और साधारण छोटे २ घरों से स्त्रियां निकल कर उन स्त्रियों ने बुद्धदेव को उसी प्रकार प्रणाम किया जिस प्रकार इन्द्र के उत्सव के ध्वज को प्रणाम करते हैं ।

समास—महाकुलेभ्यः—महान्ति च कुलानि—महाकुलानि तेभ्यः—महाकुलेभ्यः (तत्पुरुष समास) कैरातकवामननाम्—कैरातकाः च वामनाः—कैरातकवामनाः तेषाम् कैरातकवामनानाम् (द्वन्द्व समास), देवानुयानध्वजवत्—देवस्य अनुयानं तस्य ध्वजवत्—देवानुयाध्वजवत् (षष्ठी तत्पुरुष समास)

टिप्पणी—**महाकुलेभ्यः**—बड़े बड़े कुलों से, **व्यूहाः**—झुण्डों के झुण्ड, **कुब्जाः**—कुबड़े, **कैरातकवामनानाम्**—किरात और वामनों की, **नार्यः**—स्त्रियों ने, **कृशेभ्यः**—छोटे, साधारण, **निवेशनेभ्यः**—घरों से, **निःसृत्य**—निकलकर, **निःसृत्य**—निर् + सृ + क्त्वा और क्त्वा को ल्यप् → य (शेष)—निःसृत्य । **देवानुयानध्वजत्**—इन्द्र के उत्सव के ध्वज के समान, **प्रणेमुः**—प्रणाम किया । प्र + नम् धातु से लिट् लकार के प्रथम पुरुष के बहुवचन में 'प्रणेमुः' बनता है ।

ततः कुमारः खलु गच्छतीति श्रुत्वा स्त्रियः प्रेष्यजनात्प्रवृत्तिम् ।
दिदृक्षया हर्म्यतलानि जग्मुर्जनेन मान्येन कृताभ्यनुज्ञाः ॥१३॥

अन्वय—ततः प्रेष्यजनात् कुमारः खलु गच्छति इति प्रवृत्ति श्रुत्वा मान्येन जनेन कृताभ्यनुज्ञाः स्त्रियः दिदृक्षया हर्म्यतलानि जग्मुः ।

संस्कृत व्याख्या—ततः तदनन्तरम्, प्रेष्यजनात् सेवकजनात्, कुमारः राजकुमारः बुद्धः, खलु निश्चयेन, गच्छति व्रजति, इति इत्थम्, प्रवृत्तिम् समाचारं, श्रुत्वा आकर्ण्य, मान्येन पूज्येन, जनेन श्वश्रादिना, कृताभ्यनुज्ञाः—कृता विहिता (प्राप्ता) अभ्यनुज्ञा अनुमतिः याभिः ताः कृताभ्यनुज्ञाः प्राप्ताज्ञाः स्त्रियः कुलस्त्रियः, दिदृक्षया—दृष्टुमिच्छा दिदृच्छातया—दिदृक्षया दर्शनेच्छया, हर्म्यतलानि—हर्म्याणा (प्रासादानां) तलानि—हर्म्यतलानि प्रासादपृष्ठानि, जग्मुः ययुः प्रापुरित्यर्थः ।

हिन्दी अर्थ—तब (उस समय) सेवकों से 'राजकुमार (बुद्ध) जा रहे हैं' यह समाचार सुनकर मान्य अर्थात् सास ससुर आदि से आज्ञा प्राप्त की हुई कुलीन स्त्रियां (राजकुमार बुद्धदेव को) देखने की इच्छा से भवनों (महलों) की छत पर गईं ।

समास—हर्म्यतलानि—हर्म्याणां तलानि—हर्म्यतलानि (षष्ठी तत्पुरुष समास) कृताभ्यनुज्ञाः—कृता अभ्युनुज्ञा याभिः ताः—कृताभ्यनुज्ञाः (बहुब्रीहि समास)

टिप्पणी—ततः—तब, उसके बाद, **प्रेष्यजनात्**—सेवक लोगों से, **कुमारः**—राजकुमार, बुद्धदेव, **खलु**—निश्चय ही, **गच्छति**—जा रहे हैं, **इति**—यह, **प्रवृत्तिम्**—समाचार को, **प्रवृत्रिम्**—प्र+वृत्+क्तिन्→ति—प्रवृत्तिम् द्वितीया एकवचन, **श्रुत्वा**—सुनकर, **श्रुत्वा**—श्रु+क्त्वा→त्वा—श्रुत्वा, **मान्येन**—आदरणीय, पूज्य, **जनेन**—लोगों से, सास, ससुर आदि से, **कृताभ्यनुज्ञाः**—प्राप्त कर लिया है, आज्ञा जिन्होंने वे स्त्रियां, **दिदृक्षया**—देखने की इच्छा से, **दिदृक्षया**—सनन्त दृश् धातु से ष प्रत्यय होने पर द्वित्व आदि होकर स्त्रीत्व विवक्षा में टाप् प्रत्यय होता है 'आ' शेष रहता है : इस प्रकार 'दिदृक्षा' शब्द से तृतीया एकवचन में 'दिदृक्षया' बनता है । **हर्म्यतलानि**—महलों की छतों पर, **जग्मुः**—गईं, **जग्मुः**—√गम् धातु से लिट् लकार के प्रथम पुरुष के बहुवचन में **'जग्मुः'** बनता है ।

(14) ताः स्रस्तकाञ्चीगुणविघ्निताश्च सुप्तप्रबुद्धाकुललोचनाश्च ।
वृत्तान्त विन्यस्तविभूषणाश्च कौतूहलेनानिभृताः परीयुः ॥१४॥

अन्वय—स्रस्तकाञ्चीगुणविघ्निताः सुप्तप्रबुद्धाकुललोचनाः च वृत्तान्त-विन्यस्तविभूषणाश्च कौतूहलेन अनिभृताः ताः परीयु ।

संस्कृत व्याख्या—स्रस्तकाञ्चीगुणविघ्निताः स्रस्तेन— स्वस्थानान्निपतितेन काञ्चीगुणेन कटिसूत्रेण विघ्निताः वाधाम् अनुभवन्त्यः, सुप्तप्रबुद्धाकुललोचनाः —सुप्तात् निद्रातः प्रबुद्धाः निद्रामपहाय उत्थिताः इत्यर्थः (अतः तासाम्) आकुलानि लोचनानि नेत्राणि यासां ताः, च, वृत्तान्तविन्यस्तविभूषणाः—वृत्तान्तेन बुद्धस्य बहिर्गमन समाचार श्रवणेन, विन्यस्तानि धारितानि विभूषणानि आभरणानि याभिः ताः कौतूहलेन औत्सुक्येन अनिभृताः अविनीताः ताः कुलाङ्गनाः, परीयुः जग्मुः, ।

हिन्दी अर्थ– (कटिभाग से) गिरती हुई करधनी से शीघ्र गमन में बाधा का अनुभव करती हुई, सोकर उठने के कारण आकुल नेत्रों वाली बुद्ध के वहिर्गमन के समाचार को सुनकर आभूषण धारण करने वाली बुद्ध के दर्शन के कौतूहलवश अविनीत होती हुई वे स्त्रियां (बुद्ध के दर्शन के लिये) गईं ।

समास—स्रस्तकाञ्चीगुणविघ्निताः = स्रस्तेन काञ्चीगुणेन विघ्निताः = स्रस्तकाञ्चीगुणविघ्निताः (तृतीया तत्पुरुष समास), सुप्तप्रबुद्धाकुललोचनाः = सुप्तात् प्रबुद्धाः तासाम् आकुलानि लोचनानि यासाम् ताः = सुप्तप्रबुद्धाकुलोचनाः (बहुव्रीहि समास), वृत्तान्तविन्यस्तविभूषणाः = वृत्तान्तेन विन्यस्तानि विभूषणानि याभिः ताः = वृत्तान्तविन्यस्तविभूषणाः (बहुव्रीहि समास) ।

टिप्पणी—**स्रस्तकाञ्चीगुणविघ्निताः** = कटि भाग से गिरती हुई करधनी से विघ्न का अनुभव करने वाली, **सुप्तप्रबुद्धाकुललोचनाः** = सोकर उठने के कारण आकुल आंखों वाली, **वृत्तान्तविन्यस्तविभूषणाः** = बुद्ध के राज-मार्ग पर जाने के समाचार को सुनने से आभूषण धारण करने वाली, **कौतूहलेन** = बुद्ध के दर्शन की उत्सुकता के कारण, **अनिभृताः** = अविनीत होती हुईं, **ताः** = वे कुल-स्त्रियां, **परीयुः** = गईं । **अनिभृताः** = नि + भृ + क्त → त = **निभृताः** न निभृताः

इति अनिभृताः (प्रथमा बहुवचन) परीयुः = परि + √इण् गतौ धातु से लिट् लकार के प्रथम पुरुष के बहुवचन में "परीयुः" बनता है।

प्रासादसोपानतलप्रणादैः काञ्चीरवैर्नूपुरनिस्वनैश्च।
वित्रासयन्त्यो गृहपक्षिसङ्घानन्योन्यवेगांश्च समाक्षिपन्त्यः ॥१५॥

अन्वय — प्रासादसोपानतलप्रणादैः काञ्चीरवैः नूपुरनिस्वनैः च गृहपक्षिसंघान् वित्रासयन्त्यः च अन्योन्यवेगान् समाक्षिपन्त्यः (परीयुः)।

संस्कृत व्याख्या—प्रासादसोपानतलप्रणादैः = प्रासादानां हर्म्याणां यानि सोपानानि तत्र तलानां कुलस्त्रीचरणतलानां ये प्रणादाः प्रकृष्टशब्दाः निनादाः इत्यर्थः तैः निनादैः, काञ्चीरवैः = काञ्चीनां कटिसूत्राणां रवैः शब्दैः, च नूपुरनिस्वनैः = नूपुराणाम् आभूषणविशेषाणानां निस्वनैः ध्वनिभिः, झङ्कारैरित्यर्थः गृहपक्षिसंघान् = गृहाणां भवनानां ये पक्षिणः हंसादयः, तेषां, संघान् समूहान् वित्रासयन्त्यः भय प्रापयन्त्यः, अन्योन्यवेगान् अन्योन्यगतीः, समाक्षिपन्त्यः तिरस्कुर्वन्त्यः, (परीयुः जग्मुः)।

हिन्दी अर्थ—भवनों के सोपान पर (कुल स्त्रियों के) चरण तलों के निनाद से, करधनियों की झङ्कार से और नूपुर नामक आभूषणों की झङ्कार से गृह में रहने वाले पक्षियों के समूहों को अर्थात् पालतू पक्षियों के समूहों को भयभीत करती हुई और परस्पर एक दूसरे की चाल पर आक्षेप करती हुई (वे स्त्रियां गईं)।

समास—प्रासादसोपानतलप्रणादैः = प्रासादानां यानि सोपानानि तत्र तलानां (चरणतलानां) ये प्रणादाः तैः = प्रासादसोपानतलप्रणादैः (षष्ठी तत्पुरुष समास), काञ्चीरवैः = काञ्चीनां रवैः = काञ्चीरवैः (षष्ठी तत्पुरुष समास), नूपुरनिस्वनैः नूपुराणां ये निस्वनाः तैः — नूपुरनिस्वनैः (षष्ठी तत्पुरुष समास), गृहपक्षिसंघान = गृहाणां पक्षिणां ये संघाः तान् = गृहपक्षिसंघान् (षष्ठी तत्पुरुष समास)।

टिप्पणी—प्रासादसोपानतलप्रणादैः = महलों के सोपान पर स्त्रियों के चरण तलों के निनाद से, काञ्चीरवैः = करधनी के शब्दों से, झङ्कार से, नूपुर-

निस्वनै = नूपुर (पायजेब) आभूषणों की झङ्कार से, विभ्रामयन्त्य: = भयभीत करती हुईं, **वित्रासयन्त्य:** = वि + त्रास् + णिच् → इ = वित्रासि + शतृ → अत = वित्रासि + शप् → अ + अत स की इ को गुण अय् आदेश नुम् का आगम न् शेष स्त्रीलिंग के अर्थ में ङीप् → ई शेष = वित्रासयन्ती, प्रथमा बहुवचन में "**वित्रासयन्त्य:**" बनता है। **च** = और, **अन्योन्यवेगान्** = एक दूसरे की चाल पर, **समाक्षिपन्त्य:** = आक्षेप करती हुईं, **समाक्षिपन्त्य:** = सम् + आ + क्षिप् + शतृ → अत नुम् का आगम न् शेष, स्त्रीत्व विवक्षा में ङीप्—ई शेष प्रथमा बहुवचन में "समाक्षिपन्त्य:" बनता है।

कासाञ्चिदासां तु वराङ्गनानां जातत्वराणामपि सोत्सुकानाम्।
गतिं गुरुत्वाज्जगृहुर्विशाला: श्रोणीरथा: पीनपयोधराश्च ॥१६॥

अन्वय—सोत्सुकाना जातत्वराणाम् अपि आसां वरांगनानां, तु, कासाम् चित् गतिं गुरुत्वात् विशाला: श्रोणीरथा: च पीनपयोधरा: जगृहु:।

संस्कृत व्याख्या—सोत्सुकानाम् दर्शनोत्कण्ठितानाम्, जातत्वराणामपि = जाता उत्पन्ना, त्वरा, शीघ्रता, यासु ता: तासाम् = जातत्वराणाम् उत्पन्न-त्वराणाम्, अपि, आसाम्, दर्शनोत्सुकानाम् वरांगनानाम् श्रेष्ठस्त्रीणाम्, तु, कासाञ्चित् कतिपयानाम् स्त्रीणाम्, गतिं गमनप्रसरं, आसाम्, गुरुत्वात् पृथुत्वात्, विशाला: दीर्घतमा:, श्रोणीरथा: नितम्बा:, पीनपयोधरा: = पयांसि धरन्तीति पयोधरा: पीना: च पयोधरा: = पीनपयोधरा: पीनस्तना:, जगृहु: अगृह्यन्।

हिन्दी अर्थ—बुद्ध के दर्शन के लिये उत्सुक होकर शीघ्रता करने पर भी उन श्रेष्ठ कुलस्त्रियों में से कुछ स्त्रियों की गति को उन स्त्रियों के भारी होने के कारण विशाल नितम्बों और स्थूल स्तनों ने रोक दिया अर्थात् बुद्ध के दर्शन के लिये उत्कण्ठित एवं शीघ्रता करने वाली श्रेष्ठ स्त्रियों में कुछ स्त्रियों की शीघ्र गति को उनके विशाल नितम्बों और स्थूल स्तनों ने रोक दिया।

समास—जातत्वराणाम्—जाता त्वरा यासां ता: तासाम् – जातत्वराणाम् (बहुव्रीहि समास), वरांगनानां – वराणि अंगानि यासां ता: तासाम् – वरांग-नानाम् (बहुव्रीहि समास), पीनपयोधरा:—पयांसि धरन्तीति पयोधरा:, पीनाश्च पयोधरा: – पीनपयोधरा: (द्वन्द्व समास)।

टिप्पणी—सोत्सुकानाम्—(बुद्ध के दर्शन के लिये) उत्सुक, जातत्वराणाम्
—शीघ्रता होने पर, अपि—भी, आसाम्—इन, वराङ्गनानाम्—श्रेष्ठ स्त्रियों
में से, कासाञ्चित्—कुछ स्त्रियों की, गतिं—चाल को, गुरुत्वात्—भारी होने
के कारण, श्रोणीरथाः—नितम्ब, पीनपयोधराः—स्थूल स्तनों ने, जगृहुः—
रोका। गतिं—गम्+क्तिन्→ति=गति+अम्— गतिम् द्वितीया एकवचन,
जगृहुः—√ग्रह् धातु से लिट् लकार के प्रथम पुरुष के बहुवचन में "जगृहुः"
बनता है।

शीघ्रं समर्थापि तु गन्तुमन्या गतिं निजग्राह ययौ न तूर्णम्।
ह्रियाऽप्रगल्भा विनिगूहमाना रहःप्रयुक्तानि विभूषणानि ॥१७॥

अन्वय—शीघ्रं गन्तुं समर्था अपि अन्या तु गतिं निजग्राह तूर्णं न
ययौ। अप्रगल्भा रहः प्रयुक्तानि विभूषणानि ह्रिया विनिगूहमाना (आसीत्)।

संस्कृत व्याख्या—अन्या काचिदपरा, तु, शीघ्रं त्वरितं, गन्तुं प्राप्तुम्,
समर्था सक्षमा, अपि, गतिं गमनावेगं निजग्राह अग्रहीत्, तूर्णम् शीघ्रं, न नैव,
ययौ, जगाम, अप्रगल्भा संकोचस्वभावा, रहःप्रयुक्तानि रहसि योजितानि,
विभूषणानि अलङ्कारणानि, आभरणानि, ह्रिया व्रीडया, लज्जया, विनिगूहमाना
अन्तःगोपयन्ती (आसीत्)।

हिन्दी अर्थ—शीघ्र चलने में समर्थ होने पर भी दूसरी स्त्री ने तो अपनी
गति को रोक लिया और वह शीघ्रता से न गई, वह संकोच स्वभाव वाली
स्त्री एकान्त स्थान में धारण किये हुए अपने आभूषणों को लज्जा से छिपाने
लगी।

टिप्पणी—शीघ्रम्—जल्दी, गन्तुं—जाने में, समर्था अपि—समर्थ होने
पर भी, अन्या तु—एक अन्य स्त्री तो, गतिं—चाल को, निजग्राह—रोक
लिया। तूर्णम्—शीघ्र, न—नहीं, ययौ—गई। गन्तुम्—गम्+तुमुन्→तुम्—
गन्तुम्, निजग्राह—नि+√ग्रह् धातु से लिट् लकार के प्रथम पुरुष के एकवचन
में "जग्राह" बनता है। ययौ+√या प्रापणे धातु से लिट् लकार के प्रथम
पुरुष के एकवचन में "ययौ" बनता है। अप्रगल्भा—संकोची स्वभाव वाली,
रहःप्रयुक्तानि—एकान्त में पहने हुए, प्रयुक्तानि—प्र+युज्+क्त→त—

प्रयुक्तानि द्वितीया बहुवचन, **विभूषणानि** — आभरणों को, **विभूषणानि** — वि + भूष् + ल्युट → यु → अन — विभूषणानि द्वितीया बहुवचन, **ह्रिया** — लज्जा से, विनिगूहमाना—छिपाती हुई, **विनिगूहमाना** — वि + नि + गूह् + शानच् → आन "मुक्" का आगम म् शेष स्त्रीत्व विवक्षा में टाप् → आ शेष — विनिगूहमाना प्रथमा एकवचन।

परस्परोत्पीडनपिण्डितानां संमर्दसंक्षोभितकुण्डलानाम्।
तासां तदा सस्वनभूषणानां वातायनेष्वप्रशमो बभूव ॥१८॥

अन्वय—तदा परस्परोत्पीडनपिण्डितानां, **संमर्दसंक्षोभितकुण्डलानाम्,** तासाम् सस्वनभूषणानाम्, वातायनेषु अप्रशमः बभूव।

संस्कृत व्याख्या—तदा तदानीं, तस्मिन्समये, **परस्परोत्पीडनपिण्डितानाम्** —परस्परम् मिथः, उत्पीडनेन, पिण्डितानाम् एकत्रितानाम्, संमर्दसंक्षोभित-कुण्डलानां – संमर्देन संक्षोभितानि परिकम्पितानि कुण्डलानि, कर्णाभरणानि यासां ताः तासाम्, तासाम् कुलांगनानाम्, सस्वनभूषणानां—स्वनेन सह सस्वनानि ध्वनिपूर्णानि भूषणानि आभरणानि यासां ताः तासाम्, **वातायनेषु** गवाक्षेषु, अप्रशमः अशान्तिः, बभूव अभूत्।

हिन्दी अर्थ—आपस के उत्पीडन से एकत्रित हुई भीड़ के कारण एक दूसरे की रगड़ से चञ्चल हो रहे हैं कानों के कुण्डल जिनके ऐसी उन स्त्रियों के आभूषण ध्वनि पूर्ण हो रहे थे जिससे उस समय वातायनों (झरोखों) में अशान्ति (कोलाहल) हो गई।

समास—परस्परोत्पीडनपिण्डितानां = परस्परस्य उत्पीडनेन पिण्डितानाम् = परस्परोत्पीडनपिण्डितानाम् (षष्ठी, तृतीया तत्पुरुष)।

वातायनेभ्यस्तु विनिःसृतानि परस्परायासितकुण्डलानि।
स्त्रीणां विरेजुर्मुखपङ्कजानि सक्तानि हर्म्येष्विव पङ्कजानि ॥१९॥

अन्वय—वातायनेभ्यः विनिःसृतानि परस्परायासितकुण्डलानि। स्त्रीणां मुखपङ्कजानि हर्म्येषु सक्तानि पङ्कजानि इव विरेजुः।

संस्कृत व्याख्या—**वातायनेभ्यः** गवाक्षेभ्यः, **विनिःसृतानि** बहिर्निगतानि,

परस्परायासितकुण्डलानि = परस्परं मिथः आयासितानि कुण्डलानि यासां तानि, स्त्रीणां कुलस्त्रीणाम्, मुखपङ्कजानि = मुखान्येव पङ्कजानि = मुखपङ्कजानि मुखकमलानि, हर्म्येषु राजभवनेषु, सक्तानि लग्नानि, पङ्कजानि इव कमलानीव, विरेजुः शुशुभिरे। अत्रोपमालङ्कारः। उपमानं तु पङ्कजानि, उपमेयन्तु मुखपङ्कजानि. इव उपमावाचक शब्दः, विरेजुः इति साधारणधर्मोऽस्ति।

हिन्दी अर्थ—महलों के झरोखों (खिड़कियों) से बाहर निकले हुए एक दूसरे के रगड़ से व्याकुल कुण्डल वाले स्त्रियों के मुख-कमल ऐसे सुशोभित हो रहे थे जैसे राजभवनों में कमल लगे हुए हों। यहाँ उपमा अलंकार है। उपमान कमल और मुख-कमल उपमेय है। इव उपमावाचक शब्द, सुशोभित होना साधारण धर्म है। (अतः पूर्णोपमा अलंकार कहना चाहिये।) कविकुल गुरु कालिदास ने रघुवंश के सप्तम सर्ग में 'अज" दर्शन के लिये उत्सुक स्त्रियों के मुखों की उपमा कमलों मे दी है। इसी भाव साम्य को निम्नलिखित श्लोकों में देखा जा सकता है—

ता राघवं दृष्टिभिरापिवन्त्यो नार्यो न जग्मुर्विषयान्तराणि।
तथाहि शेषेन्द्रियवृत्तिरासां सर्वात्मना चक्षुरिव प्रविष्टा॥
तासां मुखैरासवगन्धगर्भैर्व्याप्तान्तराः सान्द्रकुतूहलानाम्।
विलोलनेत्रभ्रमरैर्गवाक्षाः सहस्रपत्राभरणा इवासन्॥

समास—परस्परायासित कुण्डलानि = परस्परम् आयासितानि कुण्डलानि यासां तानि = परस्परायासितकुण्डलानि (बहुब्रीहि समास), **मुखपङ्कजानि** = मुखानि एव पङ्कजानि = मुखपङ्कजानि (कर्मधारय), पङ्कजानि = पङ्के जातानि, पङ्कात् वा जातानि = पङ्कजानि (तत्पुरुष समास)।

टिप्पणी—**वातायनेभ्यः** = झरोखों से, खिड़कियों से, **विनिःसृतानि** = निकले हुए, **विनिःसृतानि** = वि + निर् + सृ + क्त → त = **विनिःसृतानि** प्रथमा बहुवचन, **परस्परायासितकुण्डलानि** = परस्पर रगड़ से व्याकुल कुण्डलों वाले, **मुखपङ्कजानि** = मुखरूपी कमल, **हर्म्येषु** = महलों में, **सक्तानि** = लगे हुये, **पङ्कजानि** = कमल, **विरेजुः** = सुशोभित हो रहे थे। **विरेजुः** = वि + √रज् धातु से लिट् लकार के प्रथम पुरुष के बहुवचन में **"विरेजुः"** बनता है। ●

ततो विमानैर्युवतीकरालैः कौतूहलोद्घाटितवातयानैः ।
श्रीमत्समन्तान्नगरं बभासे वियद्विमानैरिव साप्सरोभिः ॥२०॥

अन्वय—ततः युवतीकरालैः कौतूहलोद्घाटितवातयानैः विमानैः श्रीमत् नगरं समन्तात् साप्सरोभिः विमानैः वियद् इव बभासे ।

संस्कृत व्याख्या—ततः तस्मिन्समये, युवतीकरालैः=युवतीनां तरुणीनां करालः दन्तुराः तैः निम्नोन्नतैः, युवतीनां हासयुक्तैरित्यर्थः, कौतूहलोद्घाटितवातयानैः=कौतूहलात् औत्सुक्यात्, उद्घाटितानि अनावृतानि वातयानानि गवाक्षपूर्णयानानि, येषां तानि तैः, विमानैः वायुयानैः, श्रीमत् शोभासम्पन्न श्रीसम्पन्नं वा, नगरं पुरम्, समन्तात् सर्वतः, साप्सरोभिः मेनकोर्वश्यादियुक्तैः, विमानैः वायुयानैः, वियत् इव द्युलोक इव, बभासे शुशुभे, रेजे । अत्रोपमालङ्कारः । उपमानन्तु अत्र द्युलोकः उपमेयन्तु श्रीमन्नगरम् इव उपमावाचक शब्दः, शोभा एव उपमायाः साधारणधर्मः अस्ति । अतः पूर्णोपमालङ्कारो बोध्यः ।

हिन्दी अर्थ—तब युवती स्त्रियों से दन्तुर अर्थात् युवती स्त्रियों की निम्नोन्नत हंसी से युक्त और कौतूहलवश जिनकी खिड़कियां खोल दी गई थीं, ऐसे विमानों से युक्त तथा शोभा एवं ऐश्वर्य सम्पन्न नगर ऐसा सुशोभित हो रहा था, जैसी मेनका उर्वशी आदि अप्सराओं से युक्त विमानों से स्वर्ग-लोक की शोभा होती है । यहां उपमा अलंकार है । उपमान स्वर्ग-लोक, उपमेय ऐश्वर्य सम्पन्न नगर है । इव उपमावाचक शब्द और उपमा का साधारण धर्म सुशोभित होना है । अतः पूर्णोपगा अलंकार समझना चाहिये ।

समास—युवतीकरालैः=युवतीनां करालैः=युवतीकरालैः (षष्ठी तत्पुरुष समास), कौतूहलोद्घाटितवातयानैः=कौतूहलात् उद्घाटितानि वातयानानि येषां तानि तैः=कौतूहलोद्घाटितवातयानानि (बहुव्रीहि समास) ।

टिप्पणी—युवतीकरालैः=युवती स्त्रियों के दन्तुर अर्थात् निम्नोन्नत हासों से युक्त, **कौतूहलोद्घाटितवातयानानि**=कौतूहल से खोल दिये गये हैं, झरोखे (खिड़कियां) जिनके ऐसे, **विमानैः**=विमानों से, **श्रीमत्**=शोभा एवम् ऐश्वर्य

सम्पन्न, **नगरं** = नगर, **समन्तात्** = चारों ओर, **साप्सरोभिः** = मेनका उर्वशी आदि से अप्सराओं से युक्त, **विमानैः** = विमानों से, **वियद् इव** = स्वर्ग-लोक के समान. **बभासे** = सुशोभित हुआ अथवा चमक रहा था। **बभासे** = √भास् दीप्तौ धातु से लिट् लकार के प्रथम पुरुष के एकवचन में, आत्मनेपद में "बभासे" बनता है।

(21) वातायनानामविशालभावादन्योन्यगण्डार्पितकुण्डलानाम्।
मुखानि रेजुः प्रमदोत्तमानां बद्धाः कलापा इव पङ्कजानाम् ॥२१॥

अन्वय—वातायनानाम् अविशालभावात् अन्योन्यगण्डार्पितकुण्डलानां प्रमदोत्तमानां मुखानि पङ्कजानां बद्धाः कलापा इव रेजुः।

संस्कृत व्याख्या—वातायनानाम् गवाक्षाणाम्, अविशालभावात् स्वल्पत्वात्, नातिविशालत्वात्, अन्योन्यगण्डार्पितकुण्डलानाम् = अन्योन्यं परस्परं गण्डेषु कपोलस्थलेषु, अर्पितानि धारितानि कुण्डलानि याभिः ताः तासाम् = अन्योन्यगण्डार्पितकुण्डलानाम् परस्परं कपोलस्थलार्पितकर्णावतंसानाम्, प्रमदोत्तमानां = प्रमदासु याः उत्तमाः = प्रमदोत्तमाः श्रेष्ठस्त्रियः, वराङ्गनाः, तासाम् श्रेष्ठस्त्रीणाम्, मुखानि आननानि, पङ्कजानां कमलानां, बद्धाः, कलापाः स्तवकाः, एव, रेजुः शुशुभिरे। अत्रोपमालङ्कारः कमलानां स्तवकाः उपमानानि, स्त्रीणां मुखानि उपमेयानि, इव उपमावाचक शब्दः, शोभा एव उपमायाः साधारण धर्मोऽस्ति।

हिन्दी अर्थ—खिड़कियों के विशाल न होने के कारण अर्थात् खिड़कियों के छोटी होने के कारण एक दूसरे के कपोलों पर कान के कुण्डलों को रखे हुए श्रेष्ठ एवं परमसुन्दरी स्त्रियों के मुख कमलों के बंधे हुए गुच्छों के समान सुशोभित हो रहे थे। यहां उपमा अलंकार है। उपमान कमल के गुच्छे और उपमेय स्त्रियों के मुख हैं। इव उपमावाचक, सुशोभित होना उपमा का साधारण धर्म है। अतः यहां पूर्णोपमा अलंकार है।

समास—अन्योन्यगण्डार्पितकुण्डलानाम् = अन्योन्यं परस्परम् गण्डेषु अर्पितानि (स्थापितानि) कुण्डलानि याभिः ताः तासाम् = अन्योन्यगण्डार्पित-

कुण्डलानाम् (बहुव्रीहि समास) प्रमदोत्तमानां = प्रमदासु उत्तमाः प्रमदोत्तमाः तासाम् = प्रमदोत्तमानाम् (षष्ठी, सप्तमी तत्पुरुष समास)।

टिप्पणी—**वातायनानाम्** = खिड़कियों के, **अविशालभावात्** = बड़ी न होने के कारण अर्थात् खिड़कियों के छोटी होने के कारण, **अन्योन्यगण्डार्पितकुण्डलानाम्** = परस्पर एक दूसरे के कपोलों पर कुण्डलों को रखने वाली, **प्रमदोत्तमानां** = श्रेष्ठ एवं परमसुन्दर स्त्रियों के, **मुखानि** = मुख, **पङ्कजानां** = कमलों के, **बद्धाः** = बंधे हुए, **कलापा इव** = गुच्छों के समान, **रेजु** = सुशोभित हो रहे थे। रेजु = √राज् धातु से लिट् लकार के प्रथम पुरुष के बहुवचन में "रेजुः" बनता है।

तं ताः कुमारं पथि वीक्षमाणाः स्त्रियो बभुर्गामिव गन्तुकामाः।
ऊर्ध्वोन्मुखाश्चैनमुदीक्षमाणा नरा बभुर्द्यामिव गन्तुकामाः ॥२२॥

अन्वय—पथि तं कुमारं वीक्षमाणाः ताः स्त्रियः गाम् गन्तुकामाः इव बभुः ऊर्ध्वोन्मुखा एनम् उदीक्षमाणाः नराः द्याम् गन्तुकामा इव बभुः।

संस्कृत व्याख्या—पथि राजमार्गे, कुमारं राजकुमारं, बुद्धदेवम् वीक्षमाणाः अवलोकयन्त्यः, ताः बुद्धदर्शनोत्सुकाः, स्त्रियः कुलाङ्गनाः, गाम् पृथिवीम्, गन्तुकामाः जिगमिषन्त्यः, प्रयातुमिच्छन्त्यः, इव, बभुः शुशुभिरे, ऊर्ध्वोन्मुखाः उपरिमुखाः, एनम् बुद्धदेवम्, उदीक्षमाणाः अवलोकयन्त्यः, नराः मनुष्याः, द्याम् अन्तरिक्षम्, आकाशम्, गन्तुकामा इव जिगमिषवः इव, प्रयातुमिच्छवः, इव, बभुः शुशुभिरे। अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः।

हिन्दी अर्थ—राजमार्ग में उस राजकुमार बुद्धदेव को देखती हुई स्त्रियां ऐसी सुशोभित हो रही थीं, मानों (राजमहलों से) (वे स्त्रियां) पृथिवी पर जाने की इच्छा कर रही थीं और ऊपर को मुख किये हुए इन राजकुमार बुद्धदेव को देखते हुए पुरुष ऐसे सुशोभित हो रहे थे कि मानों (वे पुरुष) आकाश में जाने की इच्छा कर रहे थे। यहां उत्प्रेक्षा अलंकार है।

समास—ऊर्ध्वोन्मुखा = ऊर्ध्वम् मुखानि येषां ते = ऊर्ध्वोन्मुखाः (बहुव्रीहि समास)।